हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

वर्ष - ५२ | शारदीयनवरात्रअंक | अङ्क 6

इस अङ्क में —

* हिन्दुओं की शक्ति - पूजा
* शक्ति- पूजा का प्रधान रहस्य
* 'उपवास' की सार्थकता
* 'योग - चिकित्सा' में शिथिलीकरण
* 'गीता' में नवार्ण मात्र
* वैदिक उदात्त भावनाएँ
* भवानी - भक्त श्रीजगदेव
* महा - मृत्युञ्जय - स्तोत्र
* सिद्ध लक्ष्मी - स्तोत्र
* बुद्धि - वर्धक सरस्वती - विधान
* पाशुपत - शान्ति
* सूर्य - स्तोत्र
* सर्व - संकट - निवारक प्रयोग
* 'माला', 'पूजा'- सम्बन्धी प्रश्न- उत्तर

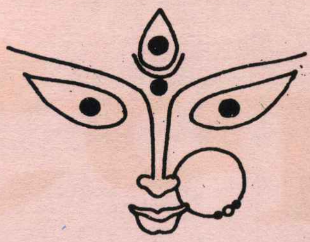

'श्री दुर्गा सप्तशती' सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकें

१ — सप्तशती- तत्व १० - ००

'श्री दुर्गा सप्तशती' के ऐतिहासिक आख्यान की दार्शनिक व्याख्या

२ — सप्तशती - सूक्त- रहस्य (प्रेस में)

सप्तशती की पाँच स्तुतियों — **१ रात्रि - सूक्त , २ शक्रादि - स्तुति, ३ श्रीनारायणी स्तुति, ४ देवी- उक्ति , ५ श्री देवी - सूक्त की ज्ञान - दायिनी विस्तृत व्याख्या ।**

३ — मन्त्रात्मक सप्तशती (स-जिल्द) १०० - ००

'श्री दुर्गा सप्तशती' के ७०० मन्त्रों में से प्रत्येक मन्त्र के अनुष्ठान की अभूतपूर्व अनुभूत विधि ।

४ — सार्थ चण्डी (श्रीदुर्गा सप्तशती) ७५ - ००

'गुप्तवती', 'शान्तनवी' आदि प्रसिद्ध संस्कृत टीकाओं के आधार पर हिन्दी में पहली बार **'श्रीदुर्गा सप्तशती'** के प्रत्येक श्लोक की विस्तृत व्याख्या ।

५ — सप्तशती - रहस्य ५ - ००

'श्रीदुर्गा सप्तशती' का पाठ - क्रम, पुरश्चरण, मन्त्र - प्रयोग एवं प्रश्न - विचार

६ — श्री दुर्गायण (हिन्दी छन्दानुवाद) १० - ००

अर्गला, कवच, कीलक, रात्रि - सूक्त, तेरह अध्यायों, देवी- सूक्त का अनूठा छन्दानुवाद ।

७ — बीज- त्रयात्मक दुर्गा - सप्तशती ४ - ००

'रहस्य- तन्त्र' में निहित 'सप्तशती' अनुष्ठान की बीज - त्रयात्मक विधि

८ — रुद्र- चण्डी ७ - ००

'रुद्र- यामल तन्त्र' में निहित 'सप्तशती' - अनुष्ठान की विधि

९ — सप्तशती के विविध प्रकार १५ - ००

'सप्त - श्लोकी दुर्गा', 'त्रयोदश- श्लोकी दुर्गा', 'गुप्त सप्तशती', 'मूल सप्तश्ती', 'श्रीगर्भ - चण्डी', 'बटुक- भैरव - स्तोत्र घटित चण्डी - विधान' एवं 'सप्तशती - सार- स्तोत्र' सहित ।

१० — लघु चण्डी (हिन्दी अनुवाद सहित) ४ - ००

महर्षि वेद - व्यास रचित **श्रीमद् - देवी भागवत में** निहित सप्तशती का मूल - पाठ ।

वर्ष ५२] [अङ्क ७

आश्विन, 'व्यय' सम्वत् २०५० वि० अक्टूबर, १९९३

मेरी चित्त - वृत्ति निज चर्नन में राखो नित,
दीजिए सु-भक्ति पाप - कर्म तैं डरचो रहूँ।
होय कैं कृपाल मोह - जाल तैं निबेरो देवि !
पाय कैं विवेक - ज्ञान ध्यान में भरचो रहूँ ।।
क्रोध - लोभ - मच्छर के अच्छर समेट डारो,
जगत् जञ्जाल इन्द्र - जाल तें टरचो रहूँ।
टेरत हूँ बार - बार फेरो जिन द्वार - द्वार,
ये ही उपचार तेरी पोर पै परचो रहूँ ।।

—'मातृ-भक्त' मुंशी माधवराम

इस अंक में

- शक्ति-पूजा १९४
- शक्ति-पूजा का रहस्य १९८
- प्रार्थना २००
- उपवास की सार्थकता २०१
- योग-चिकित्सा में 'शिथिलीकरण' २०२
- 'गीता' में नवार्ण मन्त्र २०४
- वैदिक उदात्त भावनाएं २०७
- भवानी-भक्त श्री जगदेव—एक सच्ची घटना २०९
- सच्चा ज्ञान वही, जो अनुभव से प्राप्त हो २१२
- साधन-माला २१४-२२१
  - १२२ महा-मृत्युञ्जय स्तोत्रम्
  - १२३ सिद्ध-लक्ष्मी-स्तोत्र
  - १२४ बुद्धि-वर्द्धक सरस्वती-विधान
  - १२५ पाशुपत-शान्ति
  - १२६ श्रीसूर्य-उपासना
- 'माला' और 'पूजा' सम्बन्धी जिज्ञासायें २२२
- ये हैं पुनीत 'नवरात्र' २२४

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज—२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ६

वार्षिक शुल्क : रु० ६५
आजीवन शुल्क : रु० ६५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ६००/४००
आजीवन : ६०००/४०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयागराज—२११००६

शक्ति-पूजा

श्री भूपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय, प्रयागराज (उ० प्र०)

'मातृ'-भक्त हिन्दुओं की शक्ति-पूजा कैसे और क्यों ?

'वसन्त' और **'शरद'** ऋतु में, समस्त भारत-वर्ष में **'मातृ'-भक्त** माँ की उपासना करते हैं। घर में अथवा सार्वजनिक स्थल में **'देवी' की प्रतिमा** बना कर **हिन्दू 'सप्तशती'-पाठ** द्वारा जननी की स्तुति करते हैं। प्रतिमा के सामने बैठकर **'मातृ'-भक्त हिन्दू** सर्व-प्रथम अपनी उपास्या देवी की वन्दना निम्न प्रकार करते हैं—

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्त-वीर्या, विश्वस्य बीजं परमाऽसि माया।

सम्मोहितं देवि ! समस्तमेतत्, त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति-हेतुः ।।

अर्थात् हे **माँ ! तू अनन्त-वीर्या, वैष्णवी शक्ति** है। तू ही विश्व की **'बीज'-स्वरूपा माया** है। हे देवि ! चराचर विश्व में जो कुछ है, सभी को तुमने सम्मोहित कर रक्खा है। तुम्हारी प्रसन्नता से ही **'मोह'-रूपी गड्ढे से मुक्ति** हो सकती है। **'देवी' की प्रतिमा** को **'मातृ'-भक्त हिन्दू** साधक प्रणाम करके कहते हैं—

विद्यासु शास्त्रेषु विवेक - दीपेष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ?

ममत्व - गर्तेऽति-महाऽन्धकारे, विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ।।

अर्थात् अष्टादश विद्याएँ, उपनिषदादि ब्रह्म-ज्ञानोद्दीपक शास्त्र—ये सभी अन्धकार-नाशक हैं। दीप की तरह अज्ञानान्धकार-नाशक **'विवेक'** और आदि-वाक्य वेदों के रहने पर भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को **अन्धकार-पूर्ण 'माया'-मय गर्त** में बार-बार घुमाने में तुम्हारे अतिरिक्त कौन समर्थ है ? हे जननि ! तेरे सन्तान-गण समस्त प्रकार के **शास्त्रों का अध्ययन** कर, **निर्मल विचार-बुद्धि** पाने पर भी, तेरी ही **'माया' में मुग्ध होकर 'ममता'-रूपी बुद्धि** को छोड़ने में समर्थ नहीं हैं। वे मोहान्धकार-मय संसार-चक्र में बार-बार घूमते रहते हैं। किसी तरह भी **'माया' - बन्धन** को काटकर **'मुक्ति'-लाभ** नहीं कर पाते। जीव अपनी शक्ति-द्वारा **'माया'-जाल** को काट नहीं सकता, पर यदि तेरी कृपा होती है, तो वह **'मुक्त'** हो सकता है। सारांश यह कि **पराम्बा की दया** ही 'माया'-मय संसार में जीव के निस्तार का कारण है।

'मातृ'-भक्त हिन्दुओं की उक्त **'परांम्बा'**-स्तुति के स्तोत्र में कहा गया है—

सृष्टि-स्थिति-विनाशानां, शक्ति-भूते सनातनि ! गुणाश्रये गुण-मये, नारायणि ! नमोऽस्तु ते ।।

अर्थात् तू सृजन करने में, पालन करने में और संहार करने में शक्ति-रूप से अपने को प्रकाश करती है। सत्त्व-गुण, रजो-गुण और तमो-गुण का आश्रय भी तुम्हीं हो। तुम त्रि-गुण-मयी और सनातनी हो। तुमको नमस्कार है।

अब देखना है कि 'मातृ'-भक्त हिन्दू **शक्ति की उपासना** किसलिए करते हैं ? इसका उत्तर यह है कि 'शक्ति', पर-ब्रह्म की ही शक्ति है। 'पर-ब्रह्म' विश्व की आदि-सत्ता है। वह चैतन्य-स्वरूप एवं अद्वितीय है। आरम्भ में उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उसकी सत्ता का हम लोग केवल अनुभव कर सकते हैं, परन्तु उसका स्वरूप कैसा है, यह हम लोगों के ज्ञान और बुद्धि के बाहर है। जो असीम और अनन्त है, उसको ससीम बुद्धि-द्वारा धारण करना असम्भव है। इसलिए 'श्रुति' कहती है कि वह वाक्य और मन के अतीत है। जिस समय पर-ब्रह्म की सृष्टि रचने की इच्छा हुई, उस समय उसने अपने से ही 'शक्ति' का आविर्भाव किया। इस विषय में 'श्रुति'-वाक्य है—

यथोर्ण-नाभिः सृजते गृह्णते च, यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा स्वतः पुरुषात् केश-लोमानि, तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ॥

अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी बिना किसी उपादान अथवा निमित्त के अपने शरीर से ही सूत्रादि की सृष्टि करती है, जिस प्रकार धरित्री अपनी देह से उद्भिजादि को विकसित करती है, जिस प्रकार मनुष्य के तन से केश और लोम उद्भूत होते हैं, उसी प्रकार 'पर-ब्रह्म' ने अपने से ही इस 'विश्व-ब्रह्माण्ड का प्रकाश किया है। 'शास्त्र' में कहा है—

ऊर्णनाभाद् यथा तन्तुर्जायते चेतनाज्जडः। नित्य-प्रबुद्धात् पुरुषाद्, ब्रह्मणः प्रकृतिस्तथा ॥

अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी से 'लुता-तन्तु' का जन्म होता है, उसी प्रकार चैतन्य से जड़ वस्तुओं का आविर्भाव हुआ है और वैसे ही नित्य प्रबुद्ध 'ब्रह्म'-पुरुष से 'प्रकृति' आविर्भूत हुई है।

प्रकृति कहिए, शक्ति कहिए—इनमें अन्तर कुछ नहीं है। ब्रह्म से ही शक्ति निकली है। पश्चिमी वैज्ञानिक 'शक्ति' को जड़ पदार्थ कहते हैं, परन्तु हिन्दू-मत से 'शक्ति' **चैतन्य-मयी** अथवा **चैतन्य-रूपिणी** है। हिन्दू इसी **चैतन्य-मयी शक्ति** की पूजा करते हैं, क्योंकि जो अनन्त के अंश हैं, वे भी अनन्त हैं, अतः मनुष्य 'पर-ब्रह्म' से आविर्भूत अनन्त शक्ति की धारणा करने में भी समर्थ है।

आद्या-शक्ति से ब्रह्मा, विष्णु और शिव आविर्भूत हुए हैं। ब्रह्मा रजो-गुण से सृष्टि करते हैं, विष्णु सत्त्व-गुण से विश्व का प्रतिपालन करते हैं और शिव तमो-गुण द्वारा संहार करते हैं। ये सब **गुण-मयी प्रकृति** से जन्मे हैं, अतः गुण-मय हैं। ब्रह्मा में रजो-गुण का आधिक्य है, विष्णु में सत्त्व-गुण का और शिव में तमो-गुण का। प्रत्येक की एक-एक शक्ति है और उसी शक्ति की सहायता से ये सब अपने-अपने कार्य करते हैं। संक्षेप में, जगत् की परिचालना में 'शक्ति' ही सर्व-व्यापिका है। हिन्दू धारणा-योग्य शक्तियों का अवलम्बन कर **महा-शक्ति की पूजा** करते हैं।

मनुष्य प्रत्येक समय, प्रत्येक कार्य में, प्रत्यक्ष रूप से 'शक्ति' का परिचय पाता है और उससे परिचित होता है। पृथ्वी में शक्ति कहाँ नहीं है। सभी स्थानों पर 'शक्ति' की ही लीला दिखाई देती है। 'शक्ति' ही सभी स्थानों पर क्रीड़ा कर रही है। प्रभञ्जन के प्रमत्त ताण्डव में जलधि के प्रबल तरङ्ग-ताडन में, वैश्वानर के प्रलय हुङ्कार में, अशनि के भैरव आराव में, धरती के सर्व-ग्रासी कम्पन में जिस प्रकार 'शक्ति' का प्रचण्ड प्रताप दिखलाई पड़ता है, उसी प्रकार बीज से अंकुर-उद्गम में, वृक्ष से नव-किशलय के विकाश में, तरङ्गिणी के तरलित कल-नाद में, विहङ्ग के श्रुति-मधुर कूजन में, मातङ्ग के बृंहण में और पतङ्ग के पक्ष-सञ्चालन में भी 'शक्ति' की लीला प्रकट है।

'शक्ति' कहाँ नहीं है ? दिग्-दाही महा-मरु-स्थली में, चिर-तुहिनावृत मरु-प्रदेश में, दुरारोह पर्वत-मन्दर में, दुरावगाह सागर-गर्भ में और महा-शून्य में—सभी स्थानों में 'शक्ति' की ही लीला है। शक्ति-हीन होकर कहीं भी कोई रह नहीं सकता। जीवों के समस्त कार्य, 'शक्ति' के ही अधीन हैं। इस प्रकार समस्त मानव का और बुद्धिमान् जीवों का 'शक्ति' से अवश्य ही परिचय है। 'शक्ति' की ही गोद में जीव जन्म लेते हैं और बढ़ते हैं। इसी कारण हिन्दू 'शक्ति' की पूजा जगज्जननी के रूप में करते हैं।

जैसे धुवाँ देखकर अग्नि के अस्तित्व का अनुमान होता है, इसी प्रकार 'शक्ति' को प्रत्यक्ष करके 'शक्तिमान् ब्रह्म' का अनुमान होता है। सृष्टि को देखकर ही तो स्रष्टा की उपलब्धि होती है। इसीलिए शक्ति के सहारे ही सर्व-शक्ति-मान् को पाने का यत्न करना चाहिए। **'शक्ति' की पूजा** करने-वाले कहते हैं—**'यदि पिता को जानना या पाना है, तो माता की कृपा प्राप्त करो। यही 'मातृ-कृपा-प्राप्ति'—'शक्ति' की उपासना है।**

स्थान चाहे कोई हो, जहाँ 'शक्ति' का प्रकाश है, वहीं **शक्ति की आराधना** की जा सकती है। काल और स्थान में, अनल और अनिल में, केदार और कान्तार में, आकाश और वायु में जब **शक्ति का विकास है**, तब इनमें से किसी भी एक का आधार लेकर **'शक्ति' की पूजा** की जा सकती है। परन्तु, जिस क्षेत्र में दैवी शक्ति का विशेष प्रकाश है, उस क्षेत्र में **प्रकट शक्ति का अवलम्बन** करके महा-शक्ति की आराधना करने से साधना अधिक फलवती होती है। माँ की दया शीघ्र मिलती है।

महा-शक्ति ने महिषासुर के वध-निमित्त मूर्ति धारण की थी। उस समय की, उसी प्रकट मूर्ति की पूजा आज 'मातृ-भक्त' हिन्दू करते हैं। इस **दुर्गा-मूर्ति की उत्पत्ति-कथा** पुराणों में निम्न प्रकार दी है—

एक समय महिषासुर प्रबल होकर देवताओं को पराजित करके इन्द्रत्व को प्राप्त हुआ। 'पाशव'-शक्ति ने प्रबल होकर 'आध्यात्मिक' शक्ति को तुच्छ कर दिया। उस समय पराजित देव-गण, ब्रह्मा को प्रमुख करके विष्णु और शिव के निकट गए। महिषासुर की आचरण-कथा सुनकर दोनों को क्रोध आया। दोनों के मुख से एक भारी 'तेज' आविर्भूत हुआ। साथ-साथ देवताओं के शरीर से भी 'तेज' निर्गत हुआ। तब सभी ने देखा कि वह **'तेजो-राशि'** अपनी शिखा द्वारा दिग्-दिगन्त व्याप्त करके प्रज्वलित पर्वत की तरह विराजमान है। अनन्तर वही **'तेज-समूह'** मिलकर एक नारी-मूर्ति हुई। वही नारी-मूर्त्ति **'दुर्गा'** है। उन्होंने अपने बल से महिषासुर को मारकर देवताओं को सु-प्रतिष्ठित किया। **'मातृ'-भक्त** हिन्दू उसी नारी-मूर्त्ति को ही पूजते हैं। 'महा-शक्ति' ने जिस मूर्त्ति से पशु-बल का विध्वंस किया था, उसी मूर्त्ति की यह पूजा है।

'मातृ'-भाव और 'कन्या'-भाव की शक्ति-पूजा

'मातृ'-भक्त हिन्दू की पूजा कैसी है ? अपरापर जातियों की अपेक्षा हिन्दुओं की पूजा का एक वैशिष्ट्य है। हिन्दू जिन देवताओं की पूजा करता है, उनको केवल **'प्राण-प्रतिष्ठा'** द्वारा ही प्रतिमा में नहीं आकर्षित करता, परन्तु एक विशिष्ट भावना-द्वारा आकर्षित करता है। एक ही विग्रह में, सभी हिन्दू एक ही भाव से अपने **इष्ट-देवता की भावना** नहीं करते। अधिकार-भेद से, भिन्न-भिन्न हिन्दू एक ही मूर्त्ति में विभिन्न भाव से एक ही देवता की आराधना करते हैं।

देवता की आराधना में सबसे पहले देवता के साथ 'एक सम्बन्ध' की स्थापना करनी चाहिए। भिन्न-भिन्न व्यक्ति, अपनी साधना के अनुसार, भिन्न-भिन्न रूप से **सम्बन्ध की स्थापना** करते हैं। जिस

प्रकार हम अपने परिवार में एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं, ठीक उसी प्रकार से देवता से भी सम्बन्ध स्थापित कर लेना चाहिए। 'मातृ'-भक्ति के अन्तर्गत मातृत्व के भेद से छः प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। यथा—१ मातृ-सम्बन्ध, २ पितृ-सम्बन्ध, ३ प्रभु-सम्बन्ध, ४ सखिता-सम्बन्ध, ५ स्वामि-सम्बन्ध और ६ अपत्य-सम्बन्ध। इन छहों में से, जिनकी प्रकृति में जिस 'भाव' का प्राबल्य हो, उनको उसी प्रकार के सम्बन्ध की स्थापना करनी चाहिए। यथा, जिनके मन में **'मातृ'-भाव** अथवा **'मातृ'-भक्ति** प्रबल है, उनको **'मातृ'-भाव** से साधना करनी चाहिए इत्यादि। जिसका जैसा 'भाव' है, उसे उसी को साधना द्वारा दृढ़ बनाना चाहिए।

दुर्गा देवी को साधक-गण दो भाव से पूजते हैं—कोई **'मातृ'-भाव** से एवं कोई **'कन्या-भाव'** से। दोनों ही प्रकार की पूजा में भावानुसार वैषम्य है। माता, पुत्र और कन्याओं के लिए कितना दुःख और कष्ट सहन करती है, मातृ-भक्त पुत्र उसको अच्छी तरह समझता है। इसीलिए उसका हृदय मातृ-भक्ति-रस से भर जाता है। वह माँ के लिए पागल हो जाता है। माता को खिलाने और वस्त्र पहनाने से पुत्र को कितना सुख मिलता है, उतना अन्य किसी बात से नहीं मिलता। उसको यदि कहीं कोई अच्छी चीज मिलती है, तो वह माँ के लिए उसका संग्रह करता है। इसी प्रकार, जो **'मातृ'-भाव** से देवता की साधना करते हैं, उनके मन में सर्वदा ही यह भाव जागृत रहता है कि **'जगदम्बा सब प्रकार से प्रतिपालन करती हैं। हमारे प्रति उनकी अगाध दया और प्रगाढ़ स्नेह है।** उनके सिवा मेरी अन्य गति नहीं है। **वही सभी आपत्तियों और दुःख-कष्टों से मेरी रक्षा कर रही हैं और करेंगी। उन्हीं की असीम करुणा और ममता के कारण मैं इस लोक में जीवित हूँ। अतएव इस विश्व में जो कुछ श्रेष्ठ वस्तु है, सभी हम 'परा-जननी' को निवेदित करेंगे और 'प्रसाद'-रूप में खाएँगे।'** पार्थिव जननी की सेवा जिस प्रकार होती है, उसी प्रकार **'मातृ'-भाव** का हिन्दू साधक **दुर्गा देवी की सेवा** करता है। जैसे बच्चा जब माँ के पास जाता है, तब वह सब भूल जाता है और **मातृ-सुधा-सृष्ट** हो जाता है, वैसे ही **मातृ-भाव का साधक अपनी पर-देवता की उपासना के समय संसार का सब दुःख-कष्ट भूल कर 'भक्ति'-रस से प्लावित हो जाता है।**

'मातृ-भाव' की अपेक्षा दुर्गा देवी की **'कन्या-भाव' की साधना का स्वरूप** विलक्षण है। जिस प्रकार माता-पिता अपनी पुत्री को बहुत चाहते हैं, उनका हृदय कन्या को देख कर हर्ष से भर जाता है। वे अपनी पुत्री के लिए सब कुछ त्याग करते हैं, अपनी कन्या की जिद और उसकी तरह-तरह की शरारतें आनन्द से सहन करते हैं और निभाते हैं। किस प्रकार पुत्री सुखी रहेगी—यही चिन्ता सब समय करते रहते हैं, ठीक इसी प्रकार **'कन्या-भाव' का साधक** संसार के समस्त कष्टों, दुःखों और प्रतिकूल-ताओं को आनन्द-पूर्वक सहन कर जगदम्बा की सेवा करता है। उसकी सेवा निःस्वार्थ होती है।

'मातृ-भाव' की साधना में जहाँ साधक, माँ से कुछ मिला है और मिलेगा, इस कारण 'कृतज्ञ' होता है, वहीं **'कन्या-भाव' की साधना** में 'कृतज्ञता' का कोई कारण नहीं होता। कन्या की सेवा, केवल वात्सल्यता से ही की जाती है। इसमें कोई प्रतिदान की आशा नहीं होती। यह सेवा, केवल अपनी तृप्ति के लिए ही होती है। मन चाहता है कि सेवा करूँ—इसी लिए यह 'सेवा' है।

कन्या, जब स्वामी के घर से पितृ-गृह को आती है, तब माता-पिता को कितनी प्रसन्नता होती है! अपनी शक्ति के अनुसार वे सभी उत्तम वस्तुएँ कन्या को देकर सुखी होते हैं। और फिर, लड़की जिस दिन ससुराल जाती है अर्थात विजया-दशमी के दिन लौकिक प्रथानुसार समस्त भोज्य-पदार्थ देवी

(शेष पृष्ठ १६८ के नीचे)

शक्ति-पूजा के प्रधान रहस्य

❁ श्री जरिबन्धनलाल वर्मा, प्रयागराज (उ० प्र०)

विश्व में **'पदार्थ'** और **'शक्ति'**—यही दो वस्तुएँ हैं। सृष्टि इन्हीं पर आधारित है। **'पदार्थ'** के भिन्न-भिन्न प्रकार, भिन्न-भिन्न रूप और भिन्न-भिन्न परमाणु में संयुक्त होने का ही तात्पर्य **'सृजन'** या रचना है। **'शक्ति'** के द्वारा ही इस सृष्टि के कार्य का सम्पादन होता है। **'शक्ति'** ही पदार्थों के भिन्न-भिन्न प्रकारों का संयोजन उपस्थित करती है। **'शक्ति'** के द्वारा ही संसार की सभी वस्तुओं ने अपना रूप, रङ्ग, गुण और विशेषता प्राप्त की है। **'शक्ति'** ही संसार की रचयित्री है।

संसार की चाहे किसी वस्तु का—जीव-धारियों के शरीर का ही—हम विश्लेषण क्यों न करें, वह हमें पदार्थों का बना हुआ प्रतीत होगा, परन्तु **'पदार्थ'** आपस में मिल कर अपनी विशेषता क्यों कर प्राप्त कर सकते हैं? **'शक्ति'**-द्वारा। **'शक्ति'** के द्वारा ही संश्लेषण या संगठन होता है। **'शक्ति'** ही संसार को धारण किए हुए है। अणुओं और परमाणुओं के बीच की संयोग - प्रीति और वियोग-प्रीति, ग्रहों और नक्षत्रों के बीच की आकर्षण-शक्ति, दो अभिन्न हृदयों के बीच की प्रेम - शक्ति, कर्म - वीर की कार्य-शक्ति, ज्ञान-पिपासु वैज्ञानिकों और मनीषियों की तर्क - विवेक - शक्ति—सब इसी **'शक्ति'** के भिन्न-भिन्न रूप हैं। एक ही **'शक्ति'** अनेक प्रकार से व्याप्त हो रही है।

'शक्ति' के उक्त तत्त्व को समझ लेने के कारण ही प्राचीन वीर और सशक्त भारत ने **'शक्ति-पूजा'** का आरम्भ किया था क्योंकि **'शक्ति'** ही विश्व और संसार की मूल वस्तु है। बिना **'शक्ति'** के संसार और सृष्टि की कल्पना ही नहीं हो सकती। विश्व और संसार का सृजन या जनन **'शक्ति'** ही करती है, इसलिए वही सबकी **'आद्या जननी'** है। इस मर्म को अच्छी तरह समझ कर हम भी इन्द्रादि देवताओं के साथ उस परा जननी के आगे सिर झुकाते हैं—

(पृष्ठ १६७ का शेष)

को निवेदन करते हैं। जैसे अपनी पुत्री को बिदा करने के दिन खिलाते हैं, वैसे ही देवी को खिलाते हैं। गृह-कर्त्री खूब रोती हैं और दुर्गा देवी के कान में माता की तरह कहती हैं, 'बेटी! रोओ मत, एक साल बाद फिर तुम्हें लाऊँगी'—इस प्रकार **'कन्या-भाव' को साधना बहुत ही कठिन** है।

'मातृ'-भाव का साधक माँ के पास जिस प्रकार लाड़ दिखाता है, प्रार्थना करता है, उस प्रकार **'कन्या'-भाव का साधक** नहीं कर सकता। वह जानता है कि कन्या सर्व-शक्ति-शालिनी है, तब भी सेवा करने में ही उनका अपार आनन्द है। कन्या से कुछ माँगना नहीं चाहिए। कन्या को देना ही उचित है। हे भक्तों! देखो दोनों भावों में पार्थक्य कहाँ और कैसा है? **'मातृ-भाव'** और **'कन्या-भाव'** अपने से ही उदित होता है और परिणाम के प्रति इसकी कोई दृष्टि नहीं रहती।

❁ ❁ ❁ ❁

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री, भूतानामखिलेषु या । भूतेषु सततं तस्यै, व्याप्त्यै देव्यै नमो नमः ।।
यच्च किञ्चित् क्वचिद् वस्तु, सदसद् वाऽखिलात्मिके ! तस्य सर्वस्य या शक्तिः, सा त्वं किं स्तूयसे मया ?।।

परन्तु इतना जान लेने से ही **'शक्ति-तत्त्व'** पूर्णतया नहीं जाना जा सकता । सृष्टि और रचना के साथ विनाश और मृत्यु का अविच्छेद्य सम्बन्ध है । संश्लेषण और विश्लेषण, संयोग और विच्छेद, जीवन और मरण, बनना और बिखरना, सृष्टि और लय—सब एक साथ आबद्ध हैं । **'शक्ति'** निश्चेष्ट नहीं हो सकती । **'शक्ति'** से परिवर्तन का भाव विलग नहीं किया जा सकता । **'शक्ति'** जब कभी अपना कार्य करेगी, तब परिवर्तन अवश्य ही उपस्थित होगा । इसी परिवर्तन का दूसरा नाम विनाश या मृत्यु है ।

प्रत्येक परिवर्तन के द्वारा किसी वस्तु-स्थिति का विनाश होता है अर्थात् वह वस्तु ठीक पहले की तरह नहीं रह जाती, बदली हुई वस्तु की दृष्टि से पुरानी, परिवर्तन के पहले की वस्तु मृत्यु को प्राप्त होती है और उस वस्तु के स्थान पर बदली हुई अर्थात् एक नई वस्तु उपस्थित होती है । इसलिए जीवन और मरण में कोई भेद नहीं है क्योंकि परिवर्तन अर्थात् मृत्यु से ही नई वस्तु-स्थिति अथवा जीवन का आरम्भ होता है । किसी वस्तु में परिवर्तन उपस्थित होने अर्थात् उसके मरने से ही नई वस्तु का आविर्भाव होता है । इसलिए उसी परिवर्तन को, जो मरण या विनाश है, हम जीवन या विकाश भी कहते हैं । बिना मृत्यु के जीवन की—बिना नाश के सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती ।

परिवर्तन ही संसार और समाज, ग्रह-नक्षत्र, जड़ और चेतन—सबका नियम है । परिवर्तन-शील (गति-शील) होने के कारण ही संसार को **जगत्'** कहते हैं । परिवर्तन ही सृष्टि का आधार है क्योंकि नानात्व और अनेकता ही इसके लक्षण हैं । इसी प्रकार अपरिवर्तन-शीलता अर्थात् जड़ता और निश्चेष्टता ही यथार्थ मृत्यु या प्रलय के लक्षण हैं । अतएव बनाना और बिखेरना, निर्माण करना और मिटाना, जोड़ना और तोड़ना—ये दोनों क्रियाएँ सृष्टि - रूपी एक ही सिक्के के उलटे और सीधे पहलू हैं । एक सृष्टि-क्रिया के अन्दर ये दोनों क्रियाएँ अनिवार्य रूप से चलती रहती हैं ।

अब यदि परिवर्तन ही **'शक्ति'** का प्रधान लक्षण है और जीवन तथा मरण परिवर्तन के ही दूसरे नाम हैं, तो सृष्टि ही **'शक्ति'** का भी धर्म होगा । बिना सृष्टि के **'शक्ति'** की कल्पना नहीं की जा सकती अर्थात् दूसरे शब्दों में बिना सन्तान के माता शब्द कभी सार्थक नहीं हो सकता । माता कभी निस्सन्तान नहीं हो सकती । शायद इसीलिए प्रत्येक महा-प्रलय के पश्चात् **'परा - जननी आद्या - शक्ति'** फिर सृष्टि का आरम्भ करती है । वह चुप नहीं बैठी रह सकती ।

माता निस्सन्तान क्योंकर हो सकती है ? **'शक्ति'** सर्वदा के लिए निश्चेष्ट और अशक्त क्योंकर हो सकती है ? इसीलिए वह प्रत्येक महा - प्रलय के पश्चात् एक - रूपता, सदृशता, अनन्त समानता, सीमा-रहित अभिन्नता, अखण्ड-स्तब्धता तथा सम्पूर्ण देश-काल-हीनता को मिटा कर सृष्टि के कार्य का आरम्भ करती है, परन्तु यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि रचना और निर्माण के साथ संहार और विनाश अर्थात् बनाने के साथ बिखेरने का अनिवार्य रूप से सम्बन्ध है । जो माता इस संसार को बनाती है, वही इसका संहार भी करती है । इसलिए उसके सम्बन्ध में कहा गया है—

त्वयैतद् धार्यते विश्वं, त्वयैतत् सृज्यते जगत् । त्वयैतत् पाल्यते देवि ! त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ।।
विसृष्टौ सृष्टि-रूपा त्वं, स्थिति-रूपा च पालने । तथा संहृति-रूपान्ते, जगतोऽस्य जगन्मये !।।
सृष्टि-स्थिति-विनाशानां, शक्ति-भूते सनातनि !

जो सर्व-मङ्गल-मङ्गल्या **'शिवा'** सर्वार्थ - साधिका है, जो माता संसार को तुष्टि-पुष्टि प्रदान करती है, वही दंष्ट्रा-कराल-वदना, शिरो - माला - विभूषणा **'चामुण्डा'** विनाश-कार्य का भी सम्पादन करती है। जो सुन्दर परिपूर्ण चन्द्र-बिम्बानुकारि-कनकोत्तम कान्ति से युक्त है, वही कृष्ण-वर्णा, कराला, भयावहा और दारुणा काल-रात्रि भी है। जिसका रूप अत्यन्त सौम्य है, वही अत्यन्त घोर रूप से तीनों लोकों में विचरण करती है। त्रिभुवन के मध्य में जिसके समान दया का दूसरा रूप नहीं है, वही अत्यन्त समर-निष्ठुर भी है। वही खड्गिनी, शूलिनी, घोरा, गदिनी, चक्रिणी, शङ्खिनी, चापिनी, वाणा, भुशुण्डी परिघायुधा भी है। वही वरदा है और वही रक्त-पान भी करती है, उसका नाम **'रक्त-दन्तिका'** भी है। जो समस्त सृष्टि और इन्द्रादि देवताओं का परित्राण करती है वही अति उग्र त्रिशूल, असुरासृग्-वसा-पङ्क-चर्चित खड्ग भी धारण करती है। जिसका नाम **'शाकम्भरी'** है, वही **'भीमा'** के नाम से प्रसिद्ध है।

तयैतन्मोह्यते विश्वं, सैव विश्वं प्रसूयते। सा याचिता च विज्ञानं, तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ।।
व्याप्तं तयैतत् सकलं, ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ! महा-काल्या महा-काले, महा-मारी-स्वरूपया ।।
सैव काले महा-मारी, सैव सृष्टिर्भवत्यजा। स्थितिं करोति भूतानां, सैव काले सनातनी ।।

'शक्ति-तत्त्व' के इस यथार्थ मर्म को समझने से ही मनुष्य-जाति या राष्ट्र शक्ति-सम्पन्न होता है, उसमें अनन्त बल और वीर्य का सञ्चार होता है, जीवन - मरण के वास्तविक रहस्य को जान कर वह निर्भय हो जाता है। वह मृत्यु का भी प्रसन्नता से आलिङ्गन कर सकता है। वह वीर, अविचल, धीर और निर्भीक होकर विचरण करता है। माता के वाहन 'केसरी' की तरह वह निर्भय होकर **माता के कार्यों में योग** प्रदान करता है। **शोक** और **ताप**, दुःख और **दारिद्रय** उसमें कोई अन्तर उपस्थित करने में असमर्थ होते हैं। वह सदा **'एक-भाव'** से जीवन व्यतीत करता है। **वीर बनना, पूर्ण रूप से निर्भय होना** ही माता की यथार्थ पूजा है। **'शक्ति-तत्त्व'** का यही प्रधान रहस्य है।

प्रार्थना

'धर्म' - प्रेमी बन्धुओं के लिये **'नव-रात्र'** एक महान् पर्व के रूप में चार बार आता है, जिनमें से **'शारदीय नव-रात्र'** अर्थात् आश्विन मास के शुक्ल-पक्ष में आनेवाले **'नव-रात्र'** का विशेष महत्त्व माना गया है। शरद् ऋतु के सुहावने सम-शीतोष्ण वातावरण में श्री जगदम्बा के पूजन-तर्पण का सौभाग्य लाभ करनेवाले भाग्यशाली भक्त-जन सहज ही **'शारदीय नव-रात्र'** के उक्त विशेष महत्त्व को हृदयङ्गम कर सकते हैं।

ऐसे पवित्र **'नव-रात्र पर्व'** को कैसे मनाया जाय ? यह प्रश्न उन साधकों के मन में तो उठता ही नहीं, जिन्हें श्रीगुरु-देव की दया प्राप्त है क्योंकि उन्हें उनसे वह सब **'क्रम'** प्राप्त है, जिसके अनुसार वे साधना-रत होकर दिन-प्रति-दिन 'अध्यात्म'-मार्ग पर आगे बढ़ते जाते हैं। और जिन बन्धुओं को विधिवत् **श्री गुरु-कृपा** प्राप्त नहीं हो पाई है, **वे** भी **पुस्तकादि-रूपी 'गुरु'** से मार्ग-दर्शन लेकर यथा-शक्ति **अपने** कर्तव्य का निर्वाह करते ही हैं।

श्री जगदम्बा से हमारी प्रार्थना है कि भक्त-जन किसी भी भाव से इस **'शारदीय नव-रात्र'** को मनाएँ, उन्हें आपकी दया-युक्त सत्प्रेरणा प्राप्त हो। जगत् का कल्याण हो।

उपवास की सार्थकता

※ सुश्री सुशीलाकुमारी मिश्र

'प्रकृति' सदैव से ही मनुष्य की सहायक और शुभ-चिन्तक रही है। आदि-काल से लेकर आज तक, जब कि मानव ने अपने रहन-सहन और **'आहार'** में आमूल परिवर्तन कर लिए हैं, तब भी, **'प्रकृति'** उसका साथ देती आई है। मनुष्य की सभ्यता का विकास **'प्रकृति' की दया-भावना** के कारण ही सम्भव हो सका है। सभ्यता के विकास के साथ ही मनुष्य ने अपने **'आहार'** की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया। आदि-युग के मानव की आवश्यकता जहाँ कच्चे मांस, हरी पत्तियों, जानवरों के दूध और वृक्षों में लगे फलों से पूर्ण हो जाती थी, वहाँ आज के मानव की आवश्यकता मसालों, चटपटे आहार, मद्य-मांस, अण्डों, चाय, तली हुई चीजों और अचार आदि से पूर्ण होती है। भोजन बनाने की क्रिया भी अब बहुत खर्चीली और समय लेनेवाली हो गई है। स्वाद के वश मनुष्य उस **स्वाद-पूर्ण** आहार को ग्रहण करने का अभ्यासी हो गया है, जिसे कोमल आँतें सहन नहीं कर पातीं। फलतः **'आहार'** से दुःखी हुए पेट को आराम की आवश्यकता पड़ती है।

'उपवास' आन्तरिक शुद्धि एवं आँतों की सफाई का एक सुगम मार्ग है। प्राणि-मात्र के लिए, बीमारी से बचने के लिए **'उपवास'** एक राम-बाण 'प्रयोग' है। यही कारण है कि सभी धर्मों में **'उपवास'** की व्यवस्था रखी गई है। मुसलमानों के **'रोजा'**, जैनियों के **'उपवास'** और हिन्दुओं के **एकादशी 'व्रत'** आदि इसके उदाहरण हैं। धार्मिक शिक्षा के अभाव के कारण विभिन्न धर्मों में **'उपवास'** की व्यवस्था होने पर भी **'उपवास'** के सम्बन्ध में अज्ञानता दिखाई पड़ती है। प्रायः देखा जाता है कि **'उपवास'** करने के दिन खूब ठूंस-ठूँस कर खाया जाता है। मिठाइयों आदि का बाजार गर्म रहता है और **'उपवास'** के बाद तुरन्त गरिष्ठ भोजन ग्रहण कर लिया जाता है। यह सब कमजोरी को दबाने के नाम पर होता है। **'उपवास'** के कारण कमजोरी आ जाती है, यह भ्रम है। इस प्रकार **'उपवास'** के नाम पर पेट भरने से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। अतः ऐसे **'उपवास'** न करना ही अच्छा है। यदि विधि-पूर्वक किया जाए, तो स्वास्थ्य के लिए अमृत है, अन्यथा उक्त कु-विधि-पूर्वक किया गया **'उपवास'** शरीर के लिए विष का काम करता है।

हमारा शरीर मुख्यतः दो कार्य करता है—१ **पाचन** और २ **निष्कासन**। हम जो भोजन करते हैं, शरीर में उसका 'पाचन' होता है। भोजन से रस बनते हैं और इससे रक्त की रचना होती है। रक्त से हमें 'शक्ति' और पुष्टि' मिलती है। सभी भोजन रस और रक्त के रूप में परिवर्तित नहीं होता। उसमें बहुत-सा निष्क्रिय अंश बच जाता है और वही अंश 'मल' के रूप में हमारे शरीर से निकलता है। साधारण अवस्था में शरीर की उक्त दोनों क्रियायें नियमित रूप में बिना विघ्न-बाधा के होती रहती हैं, किन्तु **'उपवास'** के समय में भोजन न करने के कारण शरीर का 'पाचन'-कार्य बन्द हो जाता है, केवल 'निष्कासन' का कार्य रहता है। अतः शरीर अपनी पूर्ण शक्ति के साथ 'निष्कासन'-कार्य में जुट जाता है और जब पेट का विकार, निष्कासन की क्रिया से निकल जाता है, तो शरीर 'नीरोग' हो जाता है।

(शेष पृष्ठ २०३ पर)

योग-चिकित्सा में 'शिथिली-करण'

डा० रामप्रसाद पाण्डेय, बिलासपुर (म० प्र०)

'योग' के आन्तरिक स्तर पर **'गहरा शिथिलीकरण'** एवं **'योग'** पर्याय-वाची शब्द बन जाते हैं क्योंकि इस अवस्था में केवल शरीर का **'शिथिलीकरण'** नहीं होता, अपितु शारीरिक आवेग और मन तथा समस्त चेतना ही **'शिथिलीकरण'** की उच्च स्थिति पर पहुँच जाती है। **'शिथिलीकरण'** का अभिप्राय है निम्न एवं अचेतन, न कि उच्च एवं चेतन। यह वह स्थिति है, जो किसी भी अन्य प्रणाली से—मुख्यतः औषधि द्वारा प्राप्त कृत्रिम निद्रावस्था से भिन्न है।

'योग' में मन की उच्च दशा पर नियन्त्रण पाया जाता है। चेतना ऊपर उठ जाती है। **'शिथिलीकरण'** के पश्चात् व्यक्ति को ऐसा ज्ञात होता है कि वह विकास की दिशा में एक पग आगे बढ़ गया है। आसन, क्रिया एवं मुद्रा के सदृश शारीरिक कार्य-कलाप भी शरीर के तनाव को कम करने के लिए उत्तम विधि है। **'हठ-योग'** के प्रति-दिन के अभ्यास से तनाव-पूर्ण मांस - पेशियाँ, खिचे हुए स्नायु-ढाँचे और कठोर जोड़—सभी ढीले पड़ जाते हैं। व्यायाम के अभाव में ही लोग **'तनाव'** की व्याधि से ग्रस्त होते हैं। हाथ से कार्य करने में शारीरिक कोशिकाओं में शर्करा दग्ध 'कार्बन' की तलछट छोड़ती है। मांस-पेशियों में घर्षण होने के कारण 'लेक्टिव' अम्ल पैदा होता है, जो मुख्य मांस-पेशियों में थकान पैदा करता है। बहुधा शरीर के थके हुए अङ्गों में या अधिक श्रम किए हुए अङ्गों में 'यूरिक' अम्ल एकत्रित होता है। इन सभी से शारीरिक थकान उत्पन्न होती है। इस प्रकार की थकान से व्यक्ति को न तो नींद आती है, न विश्राम मिलता है। परन्तु स्कूल से थका हुआ बालक पलँग पर नहीं जाना चाहता, अपितु खेलने की इच्छा करता है क्योंकि खेल से उसकी थकान शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार **'योग के अभ्यास'** से किसी अन्य क्रिया-कलाप की अपेक्षा बहुत अधिक विनोद मिलता है।

जब आप दिन में **'थकान'** का अनुभव करें, तब एक या अधिक गहरा **'प्राणायाम'** करें और देखें कि कितने शीघ्र **'थकान'** उड़ जाती है। वास्तव में उक्त **'थकान'** विषाक्त 'कार्बन डाय आक्साइड' के द्वारा उत्पन्न होती है। यदि आप प्रातः-काल थकान का अनुभव करते हुए उठते हैं, तो पलँग पर लेटे-लेटे ही **'प्राणायाम'** का अभ्यास करें। यदि आप तनाव-पूर्ण दशा में सोते हैं और रात्रि में श्वसन-क्रिया न्यून होती है, तब आप प्रातः उठने पर स्वयं वैसा ही थका या उससे अधिक थका हुआ अनुभव करेंगे। इस दशा में आप कुछ **'प्राणायाम'** करके उठिए।

आधुनिक जीवन में हम जो **'तनाव'** का सामना करते हैं, वे सचमुच के **'तनाव'** नहीं हैं। हम केवल आधुनिक चिन्ता के शिकार हैं। हम अपने मन को भौतिक वस्तुओं का शिकार होने देते हैं और अपने **'आवेगों का व्यवसाय'** करते हैं। आप अपने धन को मानसिक रोगों की चिकित्सा पर व्यय भले करें, जो आपकी सहायता कर सके या न कर सके, किन्तु **'योग'** के माध्यम से आप अपनी समस्या को सहज ही हल कर सकते हैं। **'योग'** समस्या के उद्भव को हल करेगा। समस्या के उद्भव अर्थात् जन्म देनेवाले आप स्वयं हैं। समस्याएँ परिसरीय हैं अर्थात् वातावरण के अनुसार उत्पन्न होती हैं। **'योग'** के द्वारा इन समस्याओं के हल करने की अनोखी विधि मिलती है। इस विधि को पूरी तरह

अपनाने के लिए आपको उन उपायों को समझना होगा, जो **'शिथिल होने में आवश्यक'** हैं। ये उपाय चार प्रकार के हैं—

१ निकाल फेंकना—जीवन - निर्वाह में अनेक प्रकार के विघ्नों का अनुभव होता है। उनके सम्बन्ध में विचार करना ही पड़ता है, किन्तु इस सन्दर्भ में जो अविचार-पूर्ण धारणाएँ बन जाती हैं, उन्हें मन से बाहर निकालना परमावश्यक है। आधुनिक जीवन में असत्य-कल्पनाएँ और मिथ्या आदर्श जो हमने अपना रखे हैं, उन्हें निकालना होगा। सामाजिक तथा धार्मिक अन्ध - विश्वासों से मुक्त होना सरल नहीं है। इसके लिए स्वस्थ मानसिक सहारे की आवश्यकता होती है। यह आवश्यक है कि आप 'सत्य' को जानें तभी आप अन्ध-विश्वासों को दूर कर सकेंगे। अपने तथा दूसरों के प्रति धनात्मक रुख अपनाएँ। जब कार्य करना हो, तो उचित-अनुचित का ध्यान रखें।

२ तनाव की भावना त्यागना—'तनाव' की भावना को त्यागना होगा। इसका अर्थ आत्म-समर्पण या पराजय नहीं है। किसी दुर्बलता के कारण जो तनाव उत्पन्न होता है, उसका परित्याग करना ही चाहिए। यहाँ त्यागना धनात्मक क्रिया है।

३ हार मान लेना—योग द्वारा शिथिलीकरण की धारणा के फल-स्वरूप आन्तरिक मन उच्चतर चेतना से पराजय मान लेता है। यह धनात्मक क्रिया है। इसके द्वारा व्यक्ति को अपने आन्तरिक जीवन को समझने का अवसर मिलता है। यह उच्च उत्तेजना लानेवाला तथा सन्तोष देनेवाला मानसिक कार्य है।

४ उच्चता की भावना त्यागना—उच्चतर मन की उच्चता और स्वयं का नियन्त्रण त्यागना 'शिथिलीकरण' की उच्च - तम अवस्था है। इसी अवस्था में 'शिथिलीकरण' की उच्च - तम उपलब्धि होती है।

(पृष्ठ २०१ का शेषांश)

संक्षेप में, **'उपवास'** का अर्थ है कि शरीर की पाचन-क्रिया को आराम दिया जाए, पर होता यह है कि **'उपवास'** के एक दिन पहिले और उपवास-समाप्ति पर भोजन काफी मात्रा में किया जाता है। इससे लाभ के बजाय हानि ही अधिक होती है। अतः **उपवास करने के प्रथम दिन** सन्ध्या - समय भोजन न करके केवल फलों को लेना चाहिए, उबली हुई तरकारियाँ भी ली जा सकती हैं। **दूसरे दिन** अर्थात् **'उपवास'** के दिन प्रातः काफी मात्रा में जल लेकर १-२ मील का चक्कर लगाना चाहिए। फिर शौच आदि से निवृत्त होकर शेष पूरे समय केवल पानी पीना चाहिए। यदि कमजोरी अधिक मालूम पड़ती है, तो **'नीबू'** और **'शहद'** का पानी लिया जा सकता है। **'उपवास'** के समय अधिक-से-अधिक विश्राम भी करना चाहिए। **'उपवास'** के **दूसरे दिन** प्रातः केवल रस - दार फलों के रस से **'उपवास'** समाप्त करना चाहिए तथा दोपहर या सन्ध्या को फल और सादा भोजन, दलिया - रोटी तथा उबली हुई भाजी लेनी चाहिए।

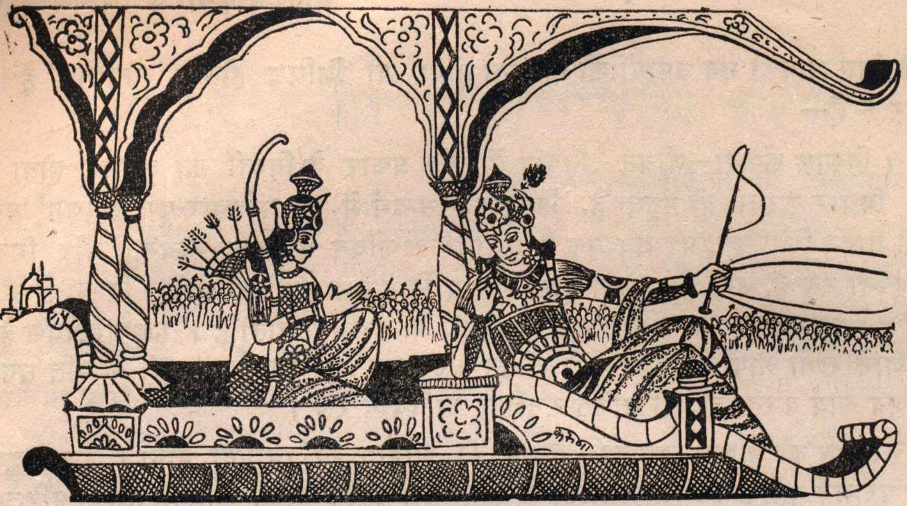

'गीता' में नवार्ण मन्त्र

श्रीसम्वित् सोमगिरि, सन्त सरोवर, आबू पर्वत (राजस्थान)

'श्रीमद्-भगवद्-गीता' के अनेक श्लोक अर्थ-गाम्भीर्य की दृष्टि से अद्भुत हैं। इन श्लोकों पर विमर्श करने से कई लक्ष्यार्थ व ध्वन्यार्थ निकल सकते हैं। द्वितीय अध्याय का तीसरा श्लोक देखें—

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ ! नैतत् त्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदय-दौर्बल्यं, त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तपः ॥

अर्थात् हे अर्जुन ! तू नपुंसकता को मत प्राप्त हो। यह तुम्हारे जैसे के लिए उचित नहीं है। हे परन्तप ! हृदय की इस दुर्बलता को, जो तुच्छ है, निकृष्ट है—त्याग कर तू उठ खड़ा हो।

'क्लीव' का अर्थ है नपुंसक। नपुंसक में पौरुष, धैर्य, प्रगल्भता व शौर्य का अभाव होता है। नपुंसक न तो सृजन कर सकता है और न गहरे आनन्द का ही अनुभव कर सकता है। प्रत्येक सर्जनात्मक कृति आनन्द से उद्भूत होती है। वह कृति सुन्दर होती है और कर्ता को आनन्द देती है। उस कृति से सम्पर्क करनेवाले को भी आनन्द का अनुभव होता है।

'क्लीवता' के उल्लेख से शोकाकुल अर्जुन की इच्छा-शक्ति या भावना-शक्ति या आनन्दानुभव-शक्ति के कुण्ठित होने का सङ्केत है।

'लक्षणा' द्वारा **'क्लीव'** शब्द से **'क्लीं'** बीज का ग्रहण होता है। **'क्लीं'** 'काम - बीज' है और भगवती काली का बीज-मन्त्र है। यह श्रीकृष्ण का भी बीज-मन्त्र है। आगमों में काली और कृष्ण की एकता प्रसिद्ध है। भगवती काली सृष्टि की संहार-कर्त्री हैं। आनन्द में ही सृष्टि संहृत होती है। अतः **'क्लीं'** आनन्द का द्योतक है।

'देवी-भागवत' के तीसरे स्कन्ध के १७ वें अध्याय में एक कथा है। मुनि - कुमार परिहास में बिदल्ल नामक मन्त्री को **'क्लीव'** (नपुंसक) कहता है। इस शब्द को वहीं पास में बैठा पञ्च-वर्षीय राजकुमार सुदर्शन सुनता है। उसे इस शब्द में से केवल **'क्ली'** याद रह जाता है। पूर्व - जन्म के संस्कारों के प्रभाव से बालक सुदर्शन **'क्ली'** को श्रद्धा-पूर्वक रटने लगता है। इससे जगदम्बा उस पर प्रसन्न हो

जाती हैं क्योंकि **'क्ली'** में अनुस्वार लगाने से **'क्लीं'** बनता है, जो भगवती के काली-रूप का बीज - मन्त्र है। इस प्रकार **'क्लैव्यं'** से **'क्लीं'** बीज को उद्धृत करने का औचित्य सिद्ध होता है।

'पार्थ' शब्द पर विचार करें। अर्जुन की माँ कुन्ती का नाम **'पृथा'** था। पृथा श्रीकृष्ण की बुआ थीं। **'पार्थ'** कहकर श्रीकृष्ण अर्जुन को दो बातों का स्मरण कराते हैं—१ मेरी बुआ का पुत्र होने के कारण तू मेरा भाई है। फिर तुझमें यह **'क्लीवता'** कैसे ? २ पृथा स्वयं तपस्विनी, वीर व धीर है। उसने दुर्वासा को प्रसन्न करके जो मन्त्र प्राप्त किया, उसी से इन्द्र का आवाहन कर उसने तुम्हें उत्पन्न किया। फिर तुममें यह नपुंसकता कैसे ?

'पृथ्' धातु का अर्थ है—विस्तार व उदार। पृथा उदार हृदयवाली व विस्तृत दृष्टिवाली थी। उसके पुत्र 'पार्थ' में क्लीवता, क्षुद्रता आदि का आना कैसे हो रहा है ? अतः **'पार्थ' सम्बोधन से यहाँ उक्त** बातें ध्वनित होती हैं।

'नैतत् त्वय्युपपद्यते (न एतत् त्वयि उपपद्यते)' अर्थात् भगवान् कहते हैं कि हे पार्थ ! तुझमें इस नपुंसकता का आ जाना किसी भी युक्ति से नहीं समझा जा सकता और हे अर्जुन ! तू स्वयं इस आ गई नपुंसकता को हमें कैसे समझा सकता है ? (अज्ञात-वास में तो तुझे उर्वशी के शाप - वशात् एक वर्ष के लिए नपुंसकता प्राप्त हुई थी, किन्तु इस समय जो नपुंसकता तुझमें आ गई है, उसके लिए तुम्हारे पास क्या उत्तर है ?) **'उपपत्ति'** का अर्थ है—युक्ति-युक्तता। 'युक्ति' करके निश्चय करना बुद्धि का कार्य है। इस प्रकार **'नैतत् त्वय्युपपद्यते'** से यह सङ्केत है कि अर्जुन की बुद्धि में—**'ज्ञान - शक्ति'** में भी विकार आ गया है। अतः **'नैतत् त्वय्युपपद्यते'** से लक्षणा द्वारा **'ऐं'** बीज को ग्रहण करते हैं। **'ऐं'** बीज विद्या की देवी—सृष्टि-कर्त्री सरस्वती का बीज-मन्त्र है। **'नैतत्'** के प्रथम अक्षर **'नै'** की मात्रा (ै) भी **'ऐं'** बीज की ओर ध्वन्यात्मक सङ्केत करती है।

अब विचार करें—**'क्षुद्रं हृदय - दौर्बल्यं त्यक्त्वा'** पर। अर्जुन शोक - मोह - ग्रस्त होकर रथ के पिछले भाग में जाकर बैठ गए थे। युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर आए थे, किन्तु शोक-मोह से आहत होकर युद्ध न करने का निश्चय कर रहे थे। वे अपनी स्थिति से च्युत हो गए थे। हृदय की दुर्बलता के कारण वे कर्तव्य को छोड़ रहे थे। अतः इस 'पद' से अर्जुन की **'क्रिया-शक्ति'** के कुण्ठित हो जाने का सङ्केत है। विशेषकर इस पद में आए **'हृदय'** शब्द से लक्षणा द्वारा **'ह्रीं'** बीज का ग्रहण होता है। **'ह्रीं'** को माया-बीज, लक्ष्मी-बीज या आगम-प्रणव भी कहते हैं। जगत् की स्थिति करनेवाली लक्ष्मी का यह बीज-मन्त्र है। जीव की मुख्य स्थिति भी हृदय-प्रदेश में मानी जाती है। इस प्रकार इस पद से **'ह्रीं'** बीज का उद्धरण समीचीन है।

'उत्तिष्ठ' शब्द द्वारा भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि नपुंसकता, हृदय की दुर्बलता एवं युद्ध न करने के निश्चय को छोड़ कर, युद्ध करने के लिए उठकर खड़े हो जाओ।

इस प्रकार मानो भगवान् अर्जुन को 'कठोपनिषद्' के मन्त्र—**'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत'**—का स्मरण करा रहे हैं। 'कठोपनिषद्' के इस मन्त्र में **'उत्तिष्ठ'** का अर्थ है—अविद्या - रूपी निद्रा को छोड़कर उठ जाओ। सम्भवतः इसी से प्रेरित होकर अर्जुन भगवान् का शिष्यत्व ग्रहण करते हैं।

'उत्तिष्ठ' शब्द से नवार्ण मन्त्र का **'विच्चे'** शब्द लक्षित होता है। **'विच्चे'** का अर्थ है—**'विद्+च+इ'** अर्थात् **'विद्मः'** = जानते हैं, **'चिन्तयामः'** = चिन्तन करें, **'इमः'** = **'गच्छामः'** = क्रिया करें अर्थात्

कर्म, उपासना एवं ज्ञान द्वारा भगवती से तादात्म्य प्राप्त करना। इस प्रकार **'विच्चे'** से तात्पर्य है कि अपनी चेतना को उठा कर देवी की चेतना (विश्व-चेतना) से एक करें। गीता के **'उत्तिष्ठ'** शब्द का भी यही अर्थ है। अतः **'उत्तिष्ठ'** शब्द से लक्षणा द्वारा नवार्ण मन्त्र के **'विच्चे'** शब्द का ग्रहण करना सार्थक है।

'परन्तप'—यह अर्जुन के प्रति सम्बोधन है। शत्रुओं को ताप पहुँचानेवाले अर्जुन को **'परन्तप'** कहा गया है। आध्यात्मिक दृष्टि से शोक-मोह आदि भी **'पर'** अर्थात् शत्रु हैं। अर्जुन इन्हें तप्त करके, परिपक्व बनाकर, त्याग कर सकते हैं। अतः यह सम्बोधन सार्थक है।

'परन्तप' से नवार्ण मन्त्र में आया हुआ **'चामुण्डायै'** शब्द लक्षित है। **'चमूम् डाति इति चामुण्डा'**—जो सेना को (शत्रु-सेना को) नष्ट करे, वह चामुण्डा' है। 'दुर्गा - सप्तशती' के ७ वें अध्याय में **'चामुण्डा'** का उल्लेख है। 'चण्ड' और 'मुण्ड' नामक असुरों का वध करने के कारण देवी **'चामुण्डा'** नाम से प्रसिद्ध हुईं—

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च, गृहीत्वा त्वमुपागता। चामुण्डेति ततो लोके, ख्याता देवि! भविष्यसि॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि गीता के द्वितीय अध्याय के तीसरे श्लोक में भगवान् ने अर्जुन को प्रसिद्ध नवार्ण मन्त्र **'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'** की गुप्त दीक्षा दी है।

दीक्षा के पूर्व व्रत - पालन आवश्यक है। जैसा कि मन्त्र है—**'व्रतेन दीक्षामाप्नोति'—यजुर्वेद, १९/३०**। व्रती जीवन का उल्लेख निषेध मुख से दूसरे श्लोक में इस प्रकार हुआ है—**'अनार्यजुष्टं, अस्वर्ग्यं, अकीर्ति-करं, अर्जुन!'** - गीता, २/२। दीक्षा में कुछ दिया जाता है, कुछ दीपन होता है और कुछ क्षालन होता है। शक्ति-मन्त्र की दीक्षा के प्रभाव से अर्जुन अपना आत्म-विश्लेषण करके कहते हैं—

'मेरे स्वभाव में कार्पण्य है, मेरे चित्त में धर्म-सम्मूढ़ता है, श्रेय का मुझे निश्चय नहीं है, श्रेय को आप मुझे बतायें। मैं आपका शिष्य हूँ। मैं आपके शरणापन्न हूँ। मुझे आप शिक्षा दीजिए।'— गीता, २/७।

स्वभाव की 'कृपणता' से 'इच्छा-शक्ति' का विकार, अनिश्चय से **'ज्ञान - शक्ति'** का विकार व धर्म-सम्मूढ़ता से **'क्रिया-शक्ति'** का विकार इङ्गित है। उसी प्रकार 'गीता' के श्लोक २/७ में आए **'प्रपन्नं'** से **'इच्छा-शक्ति'** का शोधन, **'शाधि मां'** से **'ज्ञान-शक्ति'** का शोधन एवं **'शिष्यऽस्तेहं'** से **'क्रिया-शक्ति'** का शोधन होना प्रारम्भ हुआ—यह द्योतित है। दीक्षा के प्रभाव से ही अर्जुन की शक्ति - त्रय कृष्णाभिमुखी हो गईं। अर्जुन में शिष्यत्व प्रकट होते ही श्रीकृष्ण का जगद्-गुरु - रूप अभिव्यक्त हुआ और 'गीता' का उपदेश **'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं'**—'गीता' २/११ प्रारम्भ हो गया।

कौल-कल्पतरु चण्डी

'चण्डी' मासिक पत्रिका की विशेषता यह है कि यदि आप इसे ध्यान से पढ़ने की कृपा करेंगे, तो आपको **हिन्दू-धर्म के व्यावहारिक पक्ष'** को समझने में बड़ी सरलता होगी। 'हिन्दू - धर्म' केवल एक सिद्धान्त या दर्शन मात्र नहीं है। उसका **ज्ञान-मय क्रियात्मक पक्ष** भी है और वही वास्तविक महत्त्व-वाला है। अतः निवेदन है कि **'चण्डी' मासिक पत्रिका** का सदस्य आज ही बनें।

वार्षिक मूल्य ६५-०० रु०। एक प्रति ६-०० रु०

ॐ

वैदिक उदात्त भावनाएँ

(गताङ्क से आगे) **डा० मङ्गलदेव शास्त्री**

भद्र-भावना : वैदिक मन्त्रों की एक दूसरी अनोखी विशेषता है उनकी **'भद्र-भावना'**। मनुष्य सुख के लोभ और दुःख के भय से ही किसी काम में प्रवृत्त या उससे निवृत्त होता है, किन्तु वास्तविक कर्तव्य या धर्म की भावना में सुख-दुःख की भावना का कोई स्थान नहीं होता। उसमें तो सुख और दुःख के ध्यान को बिलकुल छोड़ कर **(सुख-दुःखे समे कृत्वा)** विशुद्ध कर्तव्य-बुद्धि से ही काम करना होता है। वास्तविक **'भद्र-भावना'** या **'कल्याण-भावना'** यही है।

उक्त **'कल्याण-भावना'** इन्द्रिय-लोलुप या अपना काम निकालनेवाले आदर्श-हीन स्वार्थी व्यक्तियों की वस्तु नहीं है। इसके स्वरूप को तो वही समझ सकता है, जिसका यह विश्वास है कि उसका सत्य बोलना, संयत जीवन और आपत्तियों के आने पर भी अपने कर्तव्य से मुँह न मोड़ना—**उसके व्यक्तित्व की अनिवार्य आवश्यकताएँ** हैं। जैसे एक पुष्प का सौन्दर्य और सुगन्ध, किसी बहिरङ्ग कारण से न होकर, उसके स्वरूप का अङ्ग है, ऐसे ही कल्याण-मार्ग के पथिक का निरपेक्ष या अनासक्त होकर कर्तव्य-पालन करना, उसके स्वरूप का अङ्ग है; उसके जीवन का तत्त्व है।

मानव को परमोच्च **'देव-पद'** पर पहुँचानेवाली यह **'भद्र-भावना'** वैदिक प्रार्थनाओं में प्रायः देखने में आती है। जैसे—**यद् भद्रं तन्न आ सुव** (यजु० ३०।३) अर्थात्, हे भगवन्! जो भद्र या कल्याण है, उसे हमें प्राप्त कराइए। **भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि** (ऋ० १०।३७।६) अर्थात्, 'भद्र' या कल्याण-मार्ग पर चलते हुए हम पूर्ण जीवन को प्राप्त करें। **भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा! भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः** (यजु० २५।२१)। अर्थात्, हे यजनीय देव-गण! हम कानों से 'भद्र' को ही सुनें और आँखों से 'भद्र' को देखें। **भद्रं नो अपि वातय मनः** (ऋ० १०।२०।१)। अर्थात्, हे भगवन्! प्रेरणा कीजिए कि हमारा मन 'भद्र-मार्ग' का ही अनुसरण करे। **भद्रं-भद्रं न आ भर** (ऋ० ८।९३।२८)। अर्थात्, हे भगवन्! हमें बराबर 'भद्र' की प्राप्ति कराइए।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिद= (यजु० २५।१४)। अर्थात्, हमको ऐसे 'भद्र' अथवा कल्याण-कारी सङ्कल्प सब प्रकार से प्राप्त हों, जो अविचल हों, जिनको साधारण मनुष्य नहीं समझते और जो हमें उत्तरोत्तर उन्नति की ओर ले जानेवाले हैं।

आत्म-विश्वास की भावना : वैदिक स्तोता का स्वरूप है कि, "वह जीवन की वास्तविक परिस्थिति को खूब समझता है, पर उससे घबड़ाता नहीं है। उसकी हार्दिक इच्छा यही रहती है कि वह उसका वीरता-पूर्वक सामना करे। वह संसार में परिस्थितियों का स्वामी, न कि दास, होकर जीवन व्यतीत करना चाहता है।"

'ऋत' और **'सत्य'** की भावना तथा आशावाद की भावना का स्वाभाविक परिणाम **'आत्म-सम्मान'** या **'आत्म-विश्वास'** की भावना के रूप में होता है। सम्पूर्ण विश्व-प्रपञ्च का सञ्चालन शाश्वत नैतिक आधार पर ही हो रहा है। साथ ही मनुष्य के सामने उसकी अनन्त उन्नति का मार्ग निर्बाध खुला हुआ है—ऐसी धारणा मनुष्य में स्वभावतः **'आत्म-विश्वास'** की भावना को उत्पन्न किए बिना नहीं रह सकती।

उक्त **'आत्म-विश्वास की भावना'** स्पष्टतः अनेकानेक वैदिक मन्त्रों में ही नहीं, सूक्तों में भी, पाई जाती है। जैसे—

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्। अभीषाऽस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ।। (अथर्व० १२।१।५४)। अर्थात्, मैं स्वभावतः विजय-शील हूँ। पृथ्वी पर मेरा उत्कृष्ट पद है। मैं विरोधी शक्तियों को परास्त कर, समस्त विघ्न-बाधाओं को दबा कर प्रत्येक दिशा में सफलता को पानेवाला हूँ।

अहमस्मि सपत्नहा इन्द्र इवारिष्टो अक्षतः। अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ।।

अर्थात्, मैं शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाला हूँ। इन्द्र के समान मुझे कोई न तो मार सकता है, न पीड़ित कर सकता है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मेरे समस्त शत्रु यहाँ मेरे पैरों-तले पड़े हुए हैं।

मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः (ऋ० १०।१२८।१)। अर्थात्, मेरे लिए सब दिशाएँ झुक जाएँ। अर्थात्, प्रत्येक दिशा में मुझे सफलता प्राप्त हो।

अहमिन्द्रो न पराजिग्ये (ऋ० १०।४८।५)। अर्थात्, मैं इन्द्र हूँ, मेरी पराजय नहीं हो सकती।

यक्षा विश्वस्य भूतस्याऽहमस्मि यशस्तमः (अथर्व० ६।५८।३)। अर्थात्, जगत् के समस्त पदार्थों में मैं सबसे अधिक यशवाला हूँ। अर्थात् मनुष्य का स्थान जगत् के समस्त पदार्थों से ऊँचा है।

अ-दीनाः स्याम शरदः शतम्। भूयश्च शरदः शतात। अर्थात्, हम सौ वर्ष तक और उससे भी अधिक काल तक दैन्य से दूर रहें।

मा भेः, मा संविक्थाः (यजु० १।२३) अर्थात्, तू न तो भय-शील हो, न उद्विग्नता को प्राप्त हो।

यथा द्यौश्च पृथिवी च, न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा बिभेः ।। यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च, न बिभीतो न रिष्यतः। एवा मे प्राण मा बिभेः ।। (अथर्व० २।१५।१,३)। अर्थात्, जैसे द्यु-लोक और पृथिवी अपने-अपने कर्तव्य के पालन में न तो डरते हैं, न कोई उनको हानि पहुँचा सकता है, इसी प्रकार हे मेरे प्राण! तू भी भय को न प्राप्त हो। जैसे सूर्य और चन्द्रमा न तो भय को प्राप्त होते हैं, न कोई उनको हानि पहुँचा सकता है, इसी प्रकार हे मेरे प्राण! तू भी भय को न प्राप्त हो।

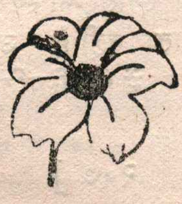

'पाटन'-राज (पटना, बिहार) की एक सच्ची घटना—

भवानी-भक्त श्री जगदेव

❀ प्रो० प्रेमशङ्कर सिंह 'प्राञ्जल', एम० ए०
प्राचार्य, बागबाहरा, रायपुर (म० प्र०)

काली रात थी। अविरल वर्षा हो रही थी। अन्धड़ और पानी में राजकुमार जगदेव अपनी पत्नी किरण देवी के साथ **'उज्जैन'** नगरी को सदा के लिए छोड़कर चले जा रहे थे। उनकी भार्या भी समान-शीला थी। एक स्थान से दूसरे स्थान होते हुए वे लोग 'पाटन' पहुँचे। यहाँ आकर जगदेव ने सबसे पहले **'श्री पाटन देवी'** के मन्दिर में श्री भगवती मां की पूजा-अर्चना की।

समय-चक्र के फेर में पड़कर राजा रङ्क हो जाते हैं। इस संसार में सच्चा सुखी भाग्य-शाली वही है, जो श्री भगवती की दया प्राप्त कर ले।

श्री जगदेव ने अपने गुणों से राजा सिद्धराज जयसिंह को प्रसन्न कर लिया। राजा ने उन्हें अपने यहाँ सामन्त के रूप में आश्रय दिया। राज्य के अन्य अधिकारी उनसे ईर्ष्या करने लगे। एक दिन राज्य के एक सम्मानित पदाधिकारी ने राजा से जगदेव पर विशेष स्नेह का कारण बतलाने का अनुरोध किया। राजा ने कहा कि, 'जो कार्य असम्भव हो, उसे जगदेव श्री भगवती की दया से सम्भव कर सकता है और फिर वह वीर-शिरोमणि है।'

कुछ दिनों बाद राजा का विवाह हुआ, किन्तु राजा ने सभा में आना छोड़ दिया। उनका चेहरा मलिन पड़ गया था। राज्य भर में यह समाचार फैल गया। लोगों के द्वारा अनेक झूठे-सच्चे अनुमान लगाए जाने लगे। सामन्त जगदेव ने भी सुना। उन्हें चिन्ता हुई। एक दिन वे स्वतः राजा के पास गए और कहा 'अन्न-दाता ! कहाँ वह तेजोद्दीप्त ललाट और कहाँ यह करुणोत्पादक दीन मुख ! यह सेवक भला आपके कब काम आएगा ? ऐसा कौन-सा दुःख है, जिससे आपकी यह दशा हो गई है ?'

राजा के नेत्र छलछला आए। नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी। राजा करुणा-विगलित हो रो पड़े। उन्होंने बहुत ही भीगे-स्वर में अपने दुःख को कहा, 'प्रिय जयदेव ! तुम मेरे अन्तरङ्ग हो। राज्य के रक्षक हो। पाटन-राज्य की जनता को तुम पर गर्व है। मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण तुम पर विपत्ति आए।'

'राजन् ! जिस राजा सिद्धराज जयसिंह से कोई भी लड़ने का साहस नहीं कर सकता, उसके मुख-मण्डल पर यह उदासी ! मुझे अपना दुःख आप अवश्य ही बताएँ।'

राजा ने लिख कर अपने मन की व्यथा को जगदेव को बतलाया। जगदेव ने पढ़कर कहा, 'श्री भवानी की सौगन्ध ! मैं आज उस दैत्य-राज के लिए काल बनूँगा। आप बिलकुल न घबराएँ।'

प्रथम मिलन की रात्रि में ज्यों ही राजा ने अपनी पत्नी को पलंग पर बैठाना चाहा था, त्यों ही न जाने कहाँ से एक भयङ्कर दैत्य वहाँ आया। उसने राजा को एक ही धक्के से गिरा दिया। राजा

ने उस दैत्य-राज से युद्ध किया, किन्तु वह शक्ति-शाली था। अन्त में राजा निरुपाय से रह गए। वह स्वतः रानी के पास पलँग पर बैठ गया। सबेरे जाने से पहले, वह राजा को धमकी देता गया कि यदि किसी को बताया, तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।

श्री भवानी श्री जगदेव की इष्ट आराध्या थीं। जगदेव ने घर जाकर जगज्जननी, गिरि-नन्दिनी, त्रिभुवन-पोषिणी, भक्त-जन-रक्षिणी शैल - सुता की भक्ति - भाव से पूजा-अर्चना की। यथा-समय वे रात्रि में काला कम्बल ओढ़कर एक तीक्ष्ण कटार लेकर राजा के शयनागार में पहुँच गए।

अर्ध-रात्रि का समय था। कमरे में हुङ्कार के साथ दैत्य-राज उपस्थित हो गया। जगदेव ने दैत्य-राज को ललकारा। थोड़ी ही देर में दोनों एक दूसरे से गुत्थम-गुत्था हो गए। दैत्य-राज बहुत ही बलशाली था। उसने राजकुमार जगदेव को अपने हाथों में जकड़ लिया।

जगदेव ने जीवन में पहली बार श्री भगवती मां को पुकारा। सहसा शयनागार में एक प्रकाश-वलय आया और वह जगदेव के शरीर में प्रविष्ट हो गया। जगदेव ने अपने शरीर में अतुल शक्ति का अनुभव किया। दूसरे ही क्षण, उस दैत्य-राज की एक टाँग टूट गई। दैत्य-राज ने दीन होकर श्रीभवानी-भक्त से प्राणों की भीख माँगी। वीर-शिरोमणि उदार जगदेव ने उसे छोड़ दिया।

पुतली-सी सुन्दर, मृग-शावक-सी भय-भीता रानी जगदेव के चरणों पर गिर पड़ी। जगदेव ने कहा—आप मेरे लिए माता के समान हैं। पूज्या हैं, देवी-स्वरूपा हैं। मुझे इस तरह से अपराधी न बनाएं।

राजा ने जगदेव को अपने अङ्क में भर लिया और कहा—मेरा मस्तक तुम्हारे सामने नत है। आज तुमने मेरे मान को बचाया है।

राजा ने अपनी तलवार से अपनी हथेली से खून निकालकर, जगदेव के मस्तक पर लगाया और कहा कि—आज से तुम्हें राजा का सम्मान दिया जाता है। श्री भवानी की पूजा—पूर्व-काल में सबसे पहले तुम्हीं करोगे। तुम्हें मैं अपनी सबसे बड़ी जागीर देता हूँ।

जगदेव ने कहा—हे दान - वीर, वीर - शिरोमणि, प्रजा-पालक ! मेरी यह प्रार्थना है कि आप रानी के प्रति कोई दुर्भावना न रखें। इसमें रानी का कोई दोष नहीं है। इस संसार में दुःख तो सभी के जीवन में होता है। किसी को कम, किसी को अधिक, पर जब यह दुःख मनुष्य को शाश्वत सत्य की ओर ले जाता है, तब वह दुःख अच्छा ही सिद्ध होता है।

जगदेव ने आकर करुणा-विगलित होकर श्री जगदम्बा के मन्दिर में प्रार्थना की। मातेश्वरी वहाँ पर उपस्थित हुईं। प्रकाश-वलय के भीतर आदि-शक्ति महा-माया को उन्होंने आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से देखा। श्री भगवती ने उनकी जीभ पर अपनी उँगली रख दी। श्री जगदेव को काव्यात्मक प्रेरणा प्राप्त हुई। वे श्री भगवती की स्तुति करने लगे—

जै जै महा-काली, जय जय ! शक्ति-भक्ति-मुक्ति-प्रदायनी जय-जय !!

इधर दैत्य-राज दौड़ा-दौड़ा श्री पार्वती मां के पास गया। चरणों में खूब सिर पटक - पटक कर रोया।

शारदीय नव-रात्र की अष्टमी की रात्रि थी। श्री भगवती चारणी के रूप में राजा के यहाँ आईं। वहाँ श्री जगदेव भी बैठे हुए थे। राजा ने श्री चारणी को प्रणाम किया। चारणी ने राजा को आशीर्वाद दिया और श्री जगदेव के सामने नमन किया।

राजा इससे क्रोधित हो गए। उन्होंने कहा कि—तुम्हें जो जगदेव देगा, उसका दुगना मैं तुम्हें दूंगा। चारणी ने जगदेव से उसका सिर माँगा। जगदेव ने अपना सिर तलवार से अलग कर, उसके थाल पर रख दिया। धड़ तदनन्तर धरा पर गिर गया।

राजा से चारणी ने कहा कि—अब अपना सिर और अपनी प्रिय महिषी का सिर लाकर मुझको दे।

राजा बहुत घबराया। वह दौड़ा-दौड़ा रानी के पास गया। रानी ने कहा—वह चारणी नहीं, कोई दुष्टा है। उसे डाँटकर निकाल दीजिए।

राजा ने चारणी को डाँटा। चारणी ने कहा—इस थाल के नीचे तू तीन बार नहक अन्यथा मैं तेरा सारा राज्य नष्ट कर दूँगी।

राजा ने डरकर ऐसा ही किया। चारणी किरणदेवी के पास गई और सभी बातें बतलाकर कहा—अपने पति का सिर ले ले और इसे धड़ से लगा दे।

किरणदेवी ने कहा—जब मेरे पति ने अपना सिर दे दिया है, तब वे क्या प्रसन्न होंगे, यदि मैं उनका सिर ले लूँ ?

चारणी ने एक चादर मँगवाकर जगदेव के निष्प्राण शरीर को ढंक दिया। फिर किरणदेवी से कहा—तू तो अपने पति से भी महान् हो गई। तू मुझसे वरदान माँग।

किरणदेवी ने कहा—जब साक्षात् जगदम्बा ने दर्शन दिया है, मेरे घर आई हैं, तो मैं अब उनसे क्या माँगूँ !

चारणी ने प्रसन्न होकर किरणदेवी को वरदान दिया—लोग तेरी पूजा देवी के रूप में करेंगे।

जगदेव के शरीर के ऊपर से जब चादर हटाई गई, तब किरणदेवी ने देखा कि उसके पति के गले पर सिर सुशोभित है और वे मुस्करा रहे हैं। साथ ही चारणी के हाथ में जो थाल है, उस पर भी उसके पति का सिर विराजमान है।

किरणदेवी भाव-विभोर होकर श्री भगवती की स्तुति करने लगीं। श्री जगदेव ने श्री देवी मां से विनय की—कृपा करें। इस गृह में साक्षात् रूप में हमारी पूजा-अर्चना स्वीकार करने की अनुपम दया करें। श्री भगवती ने कहा 'तथास्तु'। धन्य है भारत-भूमि, जहाँ जगदेव और किरणदेवी जैसे भक्त-दम्पति का जन्म होता है।

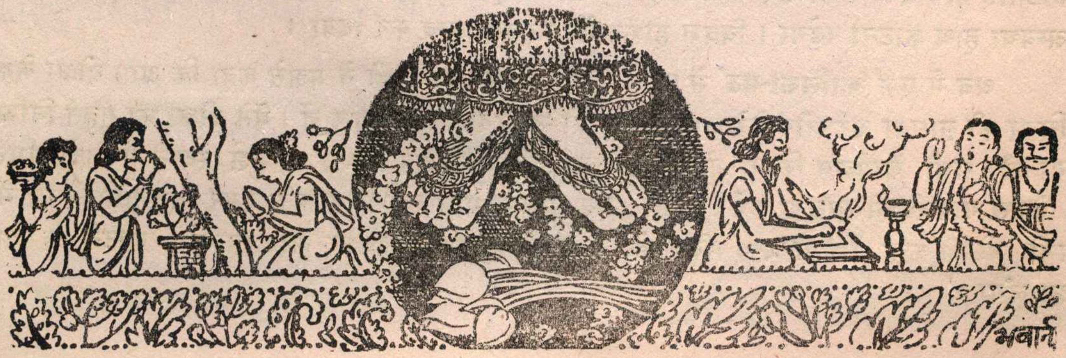

सच्चा ज्ञान वही, जो अनुभव से प्राप्त हो !

श्री ओमप्रकाश शास्त्री, धूनी पानी, अमरकण्टक, जि० शहडोल (म० प्र०)

८ वर्ष की आयु में मैंने माता-पिता से दूर जाकर संस्कृत-विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की। ११ वर्ष की आयु में मेरा यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ और मैं सन्ध्या-गायत्री-जप आदि करने लगा, किन्तु यह सब गुरु जी के भय से अथवा इस उद्देश्य से करता था कि परीक्षा में अच्छे अङ्क मिलें। नवरात्र में 'दुर्गा-सप्तशती' का पाठ करते समय भी विद्या - प्राप्ति के लिए ही सम्पुट लगाता था। एक बार तो यह अनुभूति भी हुई कि स्वप्न में साक्षात् माँ भगवती ने दर्शन देकर परीक्षा में उत्तीर्ण होने का आशीर्वाद दिया।

१४ वर्ष की आयु में मेरा विवाह हुआ और १६ वर्ष की आयु में शास्त्री-परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद संस्कृत-शिक्षक के रूप में राजकीय सेवा से जुड़ गया। नौकरी के प्रारम्भ में ही तरह-तरह की अलौकिक घटनाएँ हुईं। गृहस्थ-जीवन में जो अनेक समस्याएँ आईं, उनका समाधान भी चामत्कारिक ढङ्ग से ही हुआ। फलतः विश्वास दृढ़ होता गया कि वास्तव में 'दैवी शक्ति' भी कोई वस्तु है। तब स्वभावतः उस दिव्य शक्ति की खोज में मन लगने लगा और ग्रीष्मावकाश व अन्य अवकाशों का उपयोग केवल उसी दिशा में करने लगा। यहाँ तक कि ३७ वर्ष की आयु में ही संसार से पूर्ण हो गया और विरक्त सरकारी नौकरी व परिवार को छोड़कर घर से निकल पड़ा।

जहाँ भी पता लगता कि वहाँ कोई सिद्ध महा-पुरुष हैं, जो केवल दृष्टि-पात द्वारा ही कुण्ड-लिनी जागृत कर देते हैं अथवा सिर पर हाथ रखकर शक्ति-पात कर देते हैं, वहीं मैं पहुँच जाता और बड़े समर्पित भाव से उनकी शरण में जाता, किन्तु कुछ भी प्राप्त न होता। अनेक स्थानों पर तो अपमान भी सहना पड़ा।

निराश होकर मैंने अपनी इष्ट **'गायत्री माता'** को ही अपना गुरु मानकर एक पहाड़ की तलेटी में एकान्त में **'गायत्री मन्त्र लिखने का अनुष्ठान'** प्रारम्भ किया। दिन-रात में १४-१५ घण्टे तक मन्त्र लिखता रहता था। अधिक लिखने के कारण, तीन मास के बाद मेरा हाथ जकड़ गया और लिखने में कठिनाई होने लगी। डॉक्टरों से सलाह ली, तो उन्होंने सुझाव दिया कि आप लेखन-कार्य बन्द कर दें, अन्यथा हाथ काटना पड़ेगा। विवश होकर मैंने लिखना बन्द कर दिया।

अब मैं एक **'कालिका-मठ'** में पहुँचा। मठाधीश स्वामी जी ने मुझसे कहा कि आप दीक्षा लेकर कालिका की साधना करें और मेरे आश्रम का पूरा उत्तरदायित्व सँभाल लें। मैंने दीक्षा का मुहूर्त निश्चित किया और सभी कार्यक्रम स्थिर हो गया, किन्तु इसी बीच एक रात्रि को मुझे स्वप्न में निर्देश मिला कि **'केवल गायत्री की साधना करें। किसी अन्य साधना में न लगें।'** फलतः दूसरे दिन प्रातः-काल मैंने स्वामी जी से कहा कि 'मैं ५-७ दिन के लिए ओङ्कारेश्वर होकर आ रहा हूँ। लौटने के बाद दीक्षा लूँगा।'

अपना सब सामान वहीं छोड़कर मैं चल दिया।। ओङ्कारेश्वर में एक संन्यासी ने मुझे बताया कि 'त्र्यम्बक में एक ब्रह्मचारी जी हैं, जो गायत्री के साधक हैं। उनसे आपको कुछ मार्ग-दर्शन मिल सकता है।' अतः मैं नासिक जा पहुँचा। वहाँ एक ब्रह्मचारी जी के निर्देशानुसार षट्-चक्रों का ध्यान कर कुण्डलिनी-माला से गायत्री की आन्तरिक साधना प्रारम्भ की। अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ होने लगीं और साधना में प्रगति देखते हुए उत्साह भी बढ़ा। आन्तरिक प्रेरणा से मैं नर्मदा के उत्तर तट पर एक **'श्मशान'** में जा पहुँचा और वहीं बैठकर साधना प्रारम्भ कर दी। दो मास के बाद सायं-सन्ध्या करते-करते मेरे शरीर से चमकते हुए प्रकाश की किरणें-सी निकलने लगीं, जो आकाश की ओर जाती दिखाई दीं। लगा कि मेरा शरीर आसन से उठकर आकाश में उड़ने की स्थिति में हो गया है, किन्तु नाभि के नीचे का अङ्ग तथा दोनों हाथ शून्य हो गए। मेरी वाणी बन्द हो गई। मैं अपनी पर्ण-कुटी से केवल २०० गज की दूरी पर नर्मदा-तट पर बैठा था। बड़ी कठिनाई से उठा और कुटिया में जाकर लेट गया। सारी कुटिया भी उज्ज्वल प्रकाश से भरी हुई दिख रही थी और मेरी आँखों के सामने केवल साधु-सन्त ही बैठे दिखाई दे रहे थे। कभी कोई सुन्दर नगर दिखाई देता, तो कभी रक्त-वस्त्र पहने सुन्दर रमणियाँ नाचती-गाती दृष्टि-गत होतीं। इस प्रकार की अनुभूतियाँ एक मास तक होती रहीं। शरीर को बड़ा कष्ट रहा, किन्तु फिर स्थिति सामान्य हो गई।

दैवयोग से **'गुप्तावतार बाबाश्री'** का एक लेख तान्त्रिक साधना पर पढ़ने को मिल गया। मैंने **षट्-चक्र की साधना** उस पद्धति से करना प्रारम्भ किया, तो ४-५ दिन बाद ही मुझे ध्यान में केवल अपना ही चित्र दिखाई देने लगा। यह क्रम दीर्घकाल तक चलता रहा। मेरे सामने कोई सन्त बैठा है, ऐसी अनुभूति अब प्रायः जागृत अवस्था में ही होने लगी। जब भी मुझे कोई शङ्का होती, तो मैं अपने **'इष्ट एवं गुरु गायत्री माता'** से प्रार्थना करता और उसी दिन मुझे स्वप्नावस्था में मार्ग-दर्शन मिल जाता।

शरीर में ज्योति के दर्शन होने के बाद से जब भी मैं शरीर के किसी भाग में ध्यान स्थिर करना चाहता, तो एक ही क्षण में वहीं ध्यान स्थिर होने लगा। आज्ञा-चक्र में ज्योति भी प्रकट होने लगी और सुषुम्ना में प्राण भी जाने लगा है। इस प्रकार मुझे अपने साधना-क्रम में आशातीत प्रगति का अनुभव हो रहा है। अतः आत्म - विश्वास बढ़ता ही जा रहा है। अन्तिम लक्ष्य प्राप्त होने में चाहे कितना भी समय लगे।

मुझे जो भी अनुभूतियाँ हुई हैं, वे मैंने संक्षेप में ही लिखी हैं। षट्-चक्रों की साधना से प्राप्त होनेवाली जिन सिद्धियों का मुझे अनुभव हुआ है, उनका वर्णन करने में असमर्थ हूँ क्योंकि पाठक उसे अतिशयोक्ति समझेंगे या भ्रमित भी हो सकते हैं।

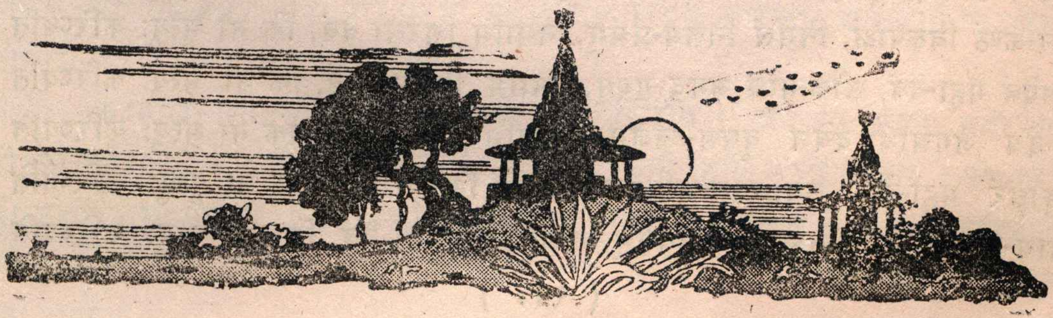

'चण्डी' के ५१ वें वर्ष [अप्रैल, ९२] से प्रकाशित

साधनमाला

[भाद्रपद-अङ्क (सितम्बर, ९३) से आगे]

(१२२)

महा-मृत्युंजय स्तोत्रम्

विनियोग—ॐ अस्य श्रीमहा - मृत्युञ्जय - स्तोत्र - मन्त्रस्य श्रीमार्कण्डेय ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमृत्युञ्जयो देवता, गौरी शक्तिः, मम सर्वारिष्ट-समस्त-मृत्यु-अपमृत्यु-शान्त्यर्थं सकलैश्वर्य-प्राप्त्यर्थं च जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीमार्कण्डेय-ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे । श्रीमृत्युञ्जय-देवतायै नमः हृदि । गौरी-शक्तये नमः नाभौ । मम सर्वारिष्ट-समस्त-मृत्यु-अप-मृत्यु-शान्त्यर्थं च जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

ध्यान—चन्द्रार्काग्नि-विलोचनं स्मित-मुखं पद्म-द्वयान्तः-स्थितम् ।
मुद्रा - पाश-मृगाक्ष-सूत्र - विलसत्-पाणिं हिमांशु - प्रभम् ।
कोटीन्दु-प्रगलत्-सुधाऽऽप्लुत-तनुं हारादि-भूषोज्ज्वलम् ।
कान्तं विश्व - विमोहनं पशु-पतिं मृत्युञ्जयं भावयेत् ।।

।। मूल-स्तोत्र ।।

ॐ रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं, नील-कण्ठमुमापतिम् । नमामि शिरसा देवं, किं नो मृत्युः करिष्यति ।
नील-कण्ठं कला-मूर्तिं, कालज्ञं काल-नाशनम्, नमामि शिरसा देवं, किं नो मृत्युः करिष्यति ।
नील-कण्ठं विरूपाक्षं, निर्मलं निलय-प्रभम्, नमामि शिरसा देवं, किं नो मृत्युः करिष्यति ।
बामदेवं महा-देवं, लोक-नाथं जगद्-गुरुम्, नमामि शिरसा देवं, किं नो मृत्युः करिष्यति ।
देव-देवं जगन्नाथं, देवेशं वृषभ-ध्वजम्, नमामि शिरसा देवं, किं नो मृत्युः करिष्यति ।
गङ्गाधरं महा-देवं, सर्वाभरण-भूषितम्, नमामि शिरसा देवं, किं नो मृत्युः करिष्यति ।
अनाथ-परमानन्दं, कैवल्य-पद-दायिनम्, नमामि शिरसा देवं, किं नो मृत्युः करिष्यति ।

स्वर्गापवर्ग-दातारं, सृष्टि-स्थिति-विनाशकम्, नमामि शिरसा देवं, किं नो मृत्युः करिष्यति ।
उत्पत्ति-स्थिति-संहार-कर्तारमीश्वरं गुरुम्, नमामि शिरसा देवं, किं नो मृत्युः करिष्यति ।
मार्कण्डेय-कृतं स्तोत्रं, यः पठेच्छिव-सन्निधौ, तस्य मृत्यु-भयं नास्ति, नाग्नि-चौर-भयं क्वचित् ।
शतावर्तं प्रकर्तव्यं, सङ्कटे कष्ट-नाशनम्, शुचिर्भूत्वा पठेत् स्तोत्रं, सर्व-सिद्धि-प्रदायकम् ।
मृत्युञ्जय महा-देव ! त्राहि मां शरणागतम्, जन्म-मृत्यु-जरा-रोगैः, पीडितं कर्म-बन्धनैः ।
तावतस्त्वद्गतः प्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड, इति विज्ञाप्य देवेशं ! त्र्यंबकाख्य-मनुं जपेत् ।
नमः शिवाय साम्बाय, हरये परमात्मने, प्रणत-क्लेश-नाशाय, योगिनां पतये नमः ।

शताङ्गायुर्मन्त्रः—ॐ ह्रों श्रीं ह्रीं ह्रों ह्रें ह्रः हन हन, दह दह, पच पच, गृहाण, मारय मारय, मर्दय मर्दय महा-महा-भैरव भैरव-रूपेण धुनय धुनय, कम्पय कम्पय, विघ्नय विघ्नय विश्वेश्वरी क्षोभय क्षोभय, कटु कटु, मोहय मोहय हुँ फट् स्वाहा ।

।। इति श्री मार्कंडेय-पुराणे मार्कंडेय-कृत महा-मृत्युञ्जय-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

(१२३)

सिद्ध-लक्ष्मी स्तोत्र

विनियोग—ॐ अस्य श्रीसिद्ध-लक्ष्मी - स्तोत्र-मन्त्रस्य हिरण्य-गर्भः ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वत्यो देवताः, श्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकं, मम सर्व-क्लेश-पीडा-परिहारार्थं सर्व-दुःख-दारिद्रय-नाशनार्थं सर्व-कार्य-सिद्ध्यर्थं च श्रीसिद्ध-लक्ष्मी-स्तोत्र-पाठे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—हिरण्य-गर्भ ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्-छन्दसे नमो मुखे । श्री महा-काली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-देवताभ्यो नमो हृदि । श्रीं बीजाय नमो गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः पादयोः । क्लीं कीलकाय नमो नाभौ । मम सर्व-क्लेश-पीड़ा-परिहारार्थं सर्व-दुःख-दारिद्रय-नाशनार्थं सर्व-कार्य-सिद्ध्यर्थं च श्रीसिद्ध-लक्ष्मी-स्तोत्र-पाठे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कर-न्यास—श्रीसिद्ध-लक्ष्म्यै अंगुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं विष्णु-तेजसे तर्जनीभ्यां नमः। क्लीं अमृताऽऽनन्दायै मध्यमाभ्यां नमः। श्रीं दैत्य-मालिन्यै अनामिकाभ्यां नमः। ह्रीं तेजः-प्रकाशिन्यै कनिष्ठिकाभ्यां नमः। क्लीं ब्राह्म्यै - वैष्णव्यै - रुद्राण्यै कर - तल - कर-पृष्ठाभ्यां नमः।

षडङ्ग-न्यास—श्रीसिद्ध-लक्ष्म्यै हृदयाय नमः। ह्रीं विष्णु-तेजसे शिरसे स्वाहा। क्लीं अमृताऽऽनन्दायै शिखायै वषट्। श्रीदैत्य-मालिन्यै कवचाय हुं। ह्रीं तेजः-प्रकाशिन्यै नेत्र-त्रयाय वौषट्। क्लीं ब्राह्म्यै-वैष्णव्यै-रुद्राण्यै अस्त्राय फट्।

'**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं श्रीसिद्ध-लक्ष्म्यै नमः**' मन्त्र से ताल - त्रय कर 'दिग्-बन्धन' करे। अब ध्यान करे—

ध्यान—ब्राह्मीं च वैष्णवीं भद्रां, षड्-भुजां च चतुर्मुखीम्।
त्रि-नेत्रां खड्ग-त्रिशूल - पद्म - चक्र-गदा-धराम् ।।१
पीताम्बर - धरां देवीं, नानाऽलङ्कार-भूषिताम्।
तेजः-पुञ्ज-धरीं श्रेष्ठां, ध्यायेद् बाल-कुमारिकाम् ।।२

ॐकारं लक्ष्मी-रूपं तु, विष्णुं हृदयमव्ययं। विष्णुमानन्दमव्यक्तं, ह्रीं-कारं बीज-रूपिणीम। क्लीं अमृतानन्दिनीं भद्रां, सत्यानन्द-दायिनीं। श्रीं दैत्य-शमनीं शक्तिं, मालिनीं शत्रुमर्दिनीम्। तेज-प्रकाशिनीं देवीं, वरदां, शुभ-कारिणीम्, ब्राह्मीं च वैष्णवीं रौद्रीं, कालिका-रूप-शोभिनीम्। अ-कारे लक्ष्मी-रूपं तू, उ-कारे विष्णुमव्ययम्, म-कारः पुरुषोऽव्यक्तो, देवो-प्रणव उच्यते। सूर्य-कोटि-प्रतीकाशं, चन्द्र-कोटि-सम-प्रभम्, तन्मध्ये निकरं सूक्ष्मं, ब्रह्म-रूपं व्यवस्थितम्। ॐ-कारं परमानन्दं सदैव सुख-सुन्दरीं, सिद्ध-लक्ष्मि ! मोक्ष-लक्ष्मि ! आद्य-लक्ष्मि नमोऽस्तु ते। सर्व-मङ्गल-माङ्गल्ये शिवे ! सर्वार्थ-साधिके ! शरण्ये त्र्यम्बके गौरि, नारायणि ! नमोऽस्तु ते।

प्रथमं त्र्यम्बका गौरी, द्वितीयं वैष्णवी तथा।

तृतीय कमला प्रोक्ता, चतुर्थं सुन्दरी तथा, पञ्चमं विष्णु-शक्तिश्च, षष्ठं कात्यायनी तथा। वाराही सप्तमं चैव, ह्यष्टमं हरि-वल्लभा, नवमी खड्गिनी प्रोक्ता, दशमं चैव देविका। एकादशं सिद्ध-लक्ष्मीर्द्वादशं हंस-वाहिनी, एतत् स्तोत्र-वरं देव्या, ये पठन्ति सदा नराः। सर्वापद्भ्यो विमुच्यन्ते, नात्र कार्या विचारणा, एक-मासं द्वि-मासं च, त्रि-मास माश्चतुष्टयं। पञ्चमासं च षण्मासं, त्रिकालं यः सदा पठेत्, ब्राह्मणः क्लेशितो दुःखी, दारिद्र्यामय-पीडितः। जन्मान्तर-सहस्रोत्थैर्मुच्यते सर्व-किल्विषैः, दरिद्रो लभते लक्ष्मीमपुत्रः पुत्र-वान् भवेत्। धन्यो यशस्वी शत्रुघ्नो वह्नि-चौर-भयेषु च, शाकिनी-भूत-वेताल-सर्प-व्याघ्र-निपातने।

राज-द्वारे सभा-स्थाने, कारा-गृह-निबन्धने, ईश्वरेण कृतं स्तोत्रं, प्राणिनां हित-कारकम् ।
स्तुवन्तु ब्राह्मणा नित्यं, दारिद्र्यं न च बाधते, सर्व-पाप-हरा लक्ष्मीः सर्व-सिद्धि-प्रदायिनी ।

।। इति श्रीब्रह्म-पुराणे श्रीसिद्ध-लक्ष्मी-स्तोत्रं ।।

(१२४)

बुद्धि-वर्धक सरस्वती-विधान

१—गाय का घी १ सेर, सहिजन की जड़ १ तोला, १५ ग्राम, मीठी वच १५ ग्राम, सेंधा नमक, धवई का फूल, लोध—सबको पोसकर ४ सेर बकरी के दूध में घी डाल मन्द आँच में पकाएँ। जब दूध व दवा जल जाए, तो घी छान लें—एक तोला घी का सेवन, सरस्वती-मन्त्र से करे, तो बुद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति बहुत ही बढ़े।

सरस्वती-मन्त्र—ॐ ह्रां ऐं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः। (१२ हजार जप से पुरश्चरण)

२—हल्दो, मीठा कूट, पीपर, सोठ, जीरा, अजमोदा, मुलेठी, सहुआ, सेंधा नमक : २५-२५ ग्राम लेकर चूर्ण करे। ४ ग्राम मक्खन से खाए। बुद्धि बढ़ेगी।

३—सारस्वत चूर्ण : गुरुचि, अपामार्ग, चिचिरी, वायविडंग, शंखपुष्पी (कौडिहार), मोठा वच, हरड़, मीठा कूट, शतावर—सब बराबर-बराबर लेकर चूर्ण करें। घी से खाए, तो बुद्धि बढ़े।

४—सोने की सलाई से या कुशा की जड़ से 'गङ्गा-जल द्वारा अष्टमी या चतुर्दशी के दिन जीभ पर 'ऐं' बीज लिखे।

५—हंसारूढा मां सरस्वती का ध्यान कर मानस-पूजा-पूर्वक निम्न मन्त्र का २१ बार जप करे—ॐ ऐं क्लीं सौः ह्रीं श्रीं ध्रीं वद वद वाग्-वादिनि सौः क्लीं ऐं श्रीसरस्वत्यै नमः।

जप-फल माँ के हाथ में अर्पित करे। तब निम्न स्तोत्र का एक पाठ नित्य करे। दोनों पक्षों की त्रयोदशी के दिन स्तोत्र का २१ पाठ करे। सरस्वती कण्ठ में वास करती हैं।

शुक्लां ब्रह्म-विचार-सार-परमां आद्यां जगद् - व्यापिनीम्।
वीणा - पुस्तक - धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्॥
हस्ते स्फाटिक - मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्।
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धि - प्रदां शारदाम्॥१
या कुन्देन्दु - तुषार - हार - धवला या शुभ्र - वस्त्रावृता,
या वीणा वर - दण्ड - मण्डित - करा या श्वेत-पद्मासना।
या ब्रह्माऽच्युत - शङ्कर - प्रभृतिभिर्देवैः सदा सेविता,
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेष - जाड्यापहा॥२
ह्लीं ह्लीं ह्लीं हृद्यैक-बीजे शशि-रुचि-कमले कल-विसृष्ट-शोभे,
भव्ये भव्यानुकूले कुमति-वन-दवे विश्व-वन्द्यांघ्रि-पद्मे।
पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणत-जनो मोद सम्पादयित्री,
प्रोत्फुल्ल-ज्ञान-कूटे हरि-निज-दयिते देवि ! संसार-तारे॥३
ऐं ऐं दृष्ट - मन्त्रे कमल-भव - मुखाम्भोज - भूत - स्वरूपे,
रूपारूप - प्रकाशे सकल - गुण - मये निर्गुणे निर्विकारे।
न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदित - विभवे नापि विज्ञान - तत्त्वे,
विश्वे विश्वान्तराले सुर-वर-नमिते निष्कले नित्य-शुद्धे॥४

९—तीन बार निम्न स्तोत्र का प्रति-दिन पाठ करे। सरस्वती की पूर्ण कृपा मिलेगी एवं मोक्ष प्राप्त होगा।

ॐ रवि-रुद्र-पितामह-विष्णु - नुतं, हरि-चन्दन-कुंकुम-पङ्क-युतम् !
मुनि-वृन्द-गजेन्द्र-समान-युतं, तव नौमि सरस्वति ! पाद-युगम्॥१
शशि-शुद्ध-सुधा-हिम-धाम-युतं, शरदम्बर-बिम्ब - समान - करम्।
बहु-रत्न-मनोहर-कान्ति-युतं, तव नौमि सरस्वति ! पाद-युगम्॥२
कनकाब्ज-विभूषित-भीति-युतं, भव-भाव-विभावित-भिन्न-पदम्।
प्रभु-चित्त-समाहित-साधु-पदं, तव नौमि सरस्वति ! पाद-युगम्॥३

मति-हीन-जनाश्रय-पारमिदं, सकलागम-भाषित - भिन्न - पदम् ।
परि-पूरित-विश्वमनेक-भवं, तव नौमि सरस्वति ! पाद - युगम् ।।४
सुर-मौलि-मणि-द्युति-शुभ्र-करं, विषयादि-महा-भय-वर्ण - हरम् ।
निज-कान्ति-विलायित-चन्द्र-शिवं, तव नौमि सरस्वति ! पाद-युगम् ।।५
भव-सागर-मज्जन-भीति-नुतं, प्रति-पादित-सन्तति-कारमिदम् ।
विमलादिक-शुद्ध-विशुद्ध-पदं, तव नौमि सरस्वति ! पाद-युगम् ।।६
परिपूर्ण-मनोरथ-धाम-निधिं, परमार्थ-विचार - विवेक - विधिम् ।
सुर-योषित-सेवित-पाद-तलं, तव नौमि सरस्वति ! पाद-युगम् ।।७
गुणनैक-कुल-स्थिति-भीति-पदं, गुण-गौरव-गर्वित - सत्य - पदम् ।
कमलोदर-कोमल-पाद-तलं, तव नौमि सरस्वति ! पाद - युगम् ।।८

।। फल-श्रुति ।।

इदं स्तोत्रं महा-पुण्यं, ब्रह्मणा परिकीर्तितं । यः पठेत् प्रातरुत्थाय, तस्य कण्ठे सरस्वती ।।
त्रिसंध्यं यो जपेन्नित्यं, जले वापि स्थले स्थितः । पाठ-मात्रे भवेत् प्राज्ञो, ब्रह्म-निष्ठो पुनः पुनः।।
हृदय-कमल-मध्ये, दीप - वद् वेद - सारे । प्रणव - मयमतर्क्यं, योगिभिः ध्यान-गम्यकम् ।।
हरि-गुरु-शिव-योगं, सर्व - भूतस्थमेकम् । सकृदपि मनसा वै, ध्यायेद् यः सः भवेन्मुक्तः ।।

—(पं० कृष्णानन्द मिश्र, 'वैद्य', ककरा, प्रयाग की कृपा से प्राप्त)

(१२५)

पाशुपत-शान्ति

ईश्वर उवाच—

वक्ष्ये पाशुपतास्त्रेण, शान्ति-जापादि पूर्वतः । पादतः पूर्व-नाशो हि, फडन्तं चापदादि-नुत् ।।

ॐ नमो भगवते महा-पाशुपताय अतुल - बल - वीर्य - पराक्रमाय त्रि-पञ्च-नयनाय नाना-प्रहरणोद्यताय सर्वाङ्ग - रक्ताय भिन्नाञ्जन-चय-प्रख्याय श्मशान-वेताल-प्रियाय सर्व-विघ्न-निकृन्तनाय सर्व-सिद्धि प्रदाय भक्तानुकम्पिने असंख्य-वक्त्र-भुज-पादाय तस्मिन् सिद्धाय वेताल - चित्रासने शाकिनी - क्षोभ - जनकाय व्याधि-निग्रह-कारिणे पाप-भञ्जनाय सूर्य-सोमाग्नि-नेत्राय विष्णु-कवचाय शङ्ख-वज्र-हस्ताय यम-दण्ड-वरुण-पाशाय रुद्र-शूलाय ज्वल-ज्जिह्वाय सर्व-रोग-विद्रावणाय ग्रह-निग्रह-कारिणे दुष्ट-नाग-क्षय-कारिणे ॐ कृष्ण - पिङ्गलाय फट् ।

हूङ्कारास्त्राय फट् । वज्र-हस्ताय फट् । शक्तये फट् । दण्डाय फट् । यमाय फट् । खड्गाय फट् । नैर्ऋत्याय फट् । वरुणाय फट् । पाशाय फट् । ध्वजाय फट् । अंकुशाय फट् । गदायै फट् । कुबेराय फट् । त्रिशूलाय फट् । मुद्गराय फट् । चक्राय फट् । पद्माय फट् । नागास्त्राय फट् । ईशानाय फट् । खेटकास्त्राय फट् । मुण्डास्त्राय फट् । कङ्कालास्त्राय फट् । पिच्छिकास्त्राय फट् । क्षुरिकास्त्राय फट् । ब्रह्मास्त्राय फट् । शक्त्यस्त्राय फट् । गणास्त्राय फट् । पिलिपिच्छास्त्राय फट् । गन्धर्वास्त्राय फट् । मूर्वास्त्राय फट् । दक्षिणास्त्राय फट् । वामास्त्राय फट् । पश्चिमास्त्राय फट् । मन्त्रास्त्राय फट् । शाकिन्यस्त्राय फट् । योगिन्यस्त्राय फट् । दण्डास्त्राय फट् । महा-दण्डास्त्राय फट् । नागास्त्राय फट् । शिवास्त्राय फट् । ईशानास्त्राय फट् । पुरुषास्त्राय फट् । अघोरास्त्राय फट् । सद्योजातास्त्राय फट् । हृदयास्त्राय फट् । महाऽस्त्राय फट् । गरुड़ास्त्राय फट् । राक्षसास्त्राय फट । दानवास्त्राय फट् । क्षौं नर-सिंहास्त्राय फट् । त्वष्ट्रास्त्राय फट् । सर्वास्त्राय फट् ।

नः फट् । वः फट् । पः फट् । फः फट् । मः फट् । श्रीः फट् । फेः फट् । भूः फट् । भुवः फट् । स्वः फट् । महः फट् । जनः फट् । तपः फट् । सर्व-लोक फट् । सर्व-पाताल फट् । सर्व-तत्त्व फट् । सर्व-प्राण फट् । सर्व-नाड़ी फट् । सर्व-कारण फट् । सर्व-देव फट् । ह्रीं फट् । श्रीं फट् । हूं फट् । श्रुं फट् । स्वां फट् । लां फट् । वैराग्याय फट् । मायाऽस्त्राय फट् । कामास्त्राय फट् । क्षेत्र-पालास्त्राय फट् । हूङ्कारास्त्राय फट् । भास्करास्त्राय फट् । चन्द्रास्त्राय फट् । विघ्नेश्वरास्त्राय फट् । ख्रों ख्रों फट् । ह्रौं ह्रीं फट् । भ्रामय भ्रामय फट् । छादय छादय फट् । उन्मूलय उन्मूलय फट् । त्रासय त्रासय फट् । सञ्जीवय सञ्जीवय फट् । विद्रावय विद्रावय फट् । सर्व-दुरितं नाशय नाशय फट् ।

सकृदावर्त्तना देव ! सर्व-विघ्नान् विनाशयेत् ।
शतावर्त्तेन चोत्पातान्, रणादौ विजयी भवेत् ।।
घृत-गुग्गुल-होमाच्च, असाध्यानपि साधयेत् ।
पठनात् सर्व-शान्तिः स्यात्, शस्त्रस्य पाशुपतस्य च ।।

उक्त **'पाशुपत अस्त्र'** का एक बार पाठ करने से सभी विघ्न शान्त हो जाते हैं । सौ बार पाठ करने से उत्पात नष्ट होते हैं और विजय मिलती है । घृत-गुग्गुल से होम करें, तो असाध्य कार्य भी सम्भव हो जाते हैं । सामान्य पाठ करने से सब प्रकार की शान्ति होती है ।

(१२६)

सर्व-रोग-नाशक सूर्य-उपासना

विनियोग—श्रीसूर्य-स्तव-राज-स्तोत्रस्य श्रीवशिष्ठ ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्री-सूर्यो देवता। सर्व-पाप-क्षय-पूर्वक-सर्व-रोगोपशमनार्थे पाठे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीवशिष्ट-ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे, श्रीसूर्य-देवाय नमः हृदि। सर्व-पाप-क्षय-पूर्वक-सर्व-रोगोपशमनार्थे पाठे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

ध्यान— ॐ रथस्थं चिन्तयेद् भानुं, द्वि-भुजं रक्त-वाससे।
दाडिमी-पुष्प-सङ्काश, पद्मादिभिः अलंकृतम्॥

मानस पूजन कर स्तोत्र-पाठ करें—

ॐविकर्तनो विवस्वांश्च, मार्त्तण्डो भास्करो रविः। लोक-प्रकाशकः श्रीमान् लोक-चक्षुर्ग्रहेश्वरः॥
लोक-साक्षी त्रिलोकेशः, कर्त्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनः तापनः चैव, शुचिः सप्ताश्व-वाहनः॥
गभस्तिहतो ब्रह्मा च, सर्व-देव-नमस्कृतः। एक-विंशति इत्येष, स्तव इष्टः सदा मम॥

॥ फल-श्रुति ॥

श्रीः आरोग्य-करः चैव, धन-वृद्धिः यशस्करः। स्तव-राज इति ख्यातः, त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥
यः एतेन महा-बाहो, द्वे सन्ध्ये स्तिमितोदये। स्तौति मां प्रणतो भूत्वा, सर्व-पापैः प्रमुच्यते॥
कायिकं वाचिकं चैव, मानसं चैव दुष्कृतम्। एक-जप्येन तत् सर्वं, प्रणश्यति ममाग्रतः॥
एक-जप्यश्च होमश्च, सन्ध्योपासनमेव च। बलि-मन्त्रोऽर्घ्य-मन्त्रश्च, धूप - मन्त्रस्तथैव च॥
अन्न-प्रदाने स्नाने च, प्रणिपाति प्रदक्षिणे। पूजितोऽय महा-मन्त्रः, सर्व-व्याधि-हरः शुभः॥
एवं उक्त्वा तु भगवान्, भास्करो जगदीश्वरः। आमन्त्र्य कृष्ण - तनयं, तत्रैवान्तरधीयत॥
सांबोऽपि स्तवराजेन, स्तुत्वा सप्ताश्ववाहनः। पूतात्मा नीरुजः श्रीमान्, तस्माद्रोगाद्विमुक्तवान्॥

उक्त स्तोत्र में भगवान् सूर्य के कल्याणकारी २१ नामों का उल्लेख हुआ है—१ विकर्तन, २ विवस्वान्, ३ मार्तण्ड, ४ भास्कर, ५ रवि, ६ लोक-प्रकाशक, ७ श्रीमान्, ८ लोक-चक्षु, ९ ग्रहेश्वर, १० लोक-साक्षी, ११ त्रिलोकेश, १२ कर्ता, १३ हर्ता, १४ तमिस्रहा, १५ तपन, १६ तापन, १७ शुचि, १८ सप्ताश्व-वाहन, १९ गभस्तिहत, २० ब्रह्मा और २१ सर्व-देव-नमस्कृत। इन नामों के प्रभाव से सभी प्रकार के रोग विशेषकर **नेत्र-रोग**, त्वचा एवं रक्त-विकार-सम्बन्धी **'कुष्ठ'** जैसे असाध्य रोग दूर होते हैं। विधियाँ **'फल-श्रुति'** में बताई गई हैं। गुरु-देव से पूछकर पाठकों को लाभ उठाना चाहिए।

जिज्ञासु के पत्र

[१]

गंजाम (उड़ीसा) से डा० माथुरी बसन्तिया लिखते हैं—

"....'माला' सर्पाकृति होनी चाहिए, लेकिन हमने जितनी मालाएँ देखी हैं, वे सब सर्पाकृति नहीं हैं। जो लोग 'रुद्राक्ष' की माला में 'जप' करते हैं, वे सब आगे-पीछे समान हैं, सर्पाकृति नहीं हैं, किन्तु जो लोग 'तुलसी' की माला पर जप करते हैं, वे सब सर्पाकृति हैं। 'गोपाल-सहस्र-नाम' सम्मोहन तन्त्र से उद्धृत है। 'सम्मोहन - तन्त्र' का प्रकाशन आपने आज तक नहीं किया है।....'अजपा-गायत्री-साधना' करनेवाले को 'गायत्री'-जप करना होगा या नहीं? 'वक्र-तुण्ड और उच्छिष्ट गणपति' में से कौन सहज साध्य है?..."

उत्तर—आपने 'माला' की आकृति के सम्बन्ध में लिखा है कि उसे सर्पाकार होना चाहिए, किन्तु इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण उद्धृत नहीं किया है। कृपया सूचित करें कि किस ग्रन्थ में यह लिखा है कि माला 'सर्पाकृति' में होनी चाहिए। 'साधना-रहस्य' (मूल्य २५ रु०) के पृष्ठ १५ पर सर्व-श्रेष्ठ वर्ण-माला के सम्बन्ध में यह अवश्य लिखा है कि वह भावना द्वारा कुण्डलिनी-रूप सूत्र में ग्रथित होगी। कुण्डलिनी का आकार अवश्य सर्प के समान माना गया है। उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि माला को सर्पाकार होना चाहिए, किन्तु इस आकार की उपलब्धि का साधन 'भावना' ही है। 'भावना' यदि है, तो 'रुद्राक्ष-माला' क्या, सभी मालाएँ सर्पाकृति में ही दिखाई देंगी।

'सम्मोहन तन्त्र' मुद्रित या हस्त-लिखित रूप में, अभी तक, हमारे देखने में नहीं आया है। यदि मिले, तो हम उसे प्रकाशित करेंगे।

अजपा-साधना में जप स्वतः होता रहता है निरन्तर। अतः अलग जप की क्या आवश्यकता!

'वक्र-तुण्ड' या 'उच्छिष्ट' दोनों ही गणपति-स्वरूपों की साधना सहज-साध्य है। केवल साधक में रुचि होनी चाहिए।

(२)

डा० शुभवन्तकिशोर श्रीवास्तव, शहडोल (म० प्र०) से लिखते हैं—

"...आपकी पुस्तक **'पूजा - रहस्य'** पढ़ी। सचमुच आपने पूजा का रहस्य आध्यात्मिक और वैज्ञानिक दृष्टि से लिखा बहुत उत्तम और स्पष्ट है। इस पुस्तक के पढ़ने से—मनन करने से **'हम पूजा-पद्धति क्यों इस प्रकार करते हैं'**—इस जिज्ञासा का समाधान पूर्णतया हो जाता है। वैज्ञानिक, आध्यात्मिक और आधि-दैविक तीनों दृष्टिकोणों से यह सिद्ध हो जाता है कि हमारी **'सनातनी पद्धति'** कितनी ठोस और सत्य है। इसके लिए आपको कोटिशः नमन तथा साधुवाद धन्यवाद के साथ अर्पित है।

हाँ, आप द्वारा लिखित पुस्तक में उद्धृत एक बात मुझे नहीं जँची। उसे मैं विनम्रता के साथ आपके सामने रख रहा हूँ। वह है पृष्ठ ५ पर, **'पूजन - क्रियाओं का मनोवैज्ञानिक पक्ष'** के अन्तर्गत **'पूजन में विजयादि का उपयोग!'** **'विजया'** यानी **'भङ्ग'** एक मादक पदार्थ है। आप कहते हैं, **'यह व्यसन नहीं बन सकता।'** व्यसन **'किया'** नहीं जाता, उपयोग से **'हो'** जाता है। मादक वस्तु से इन्द्रियाँ

उत्तेजित होती हैं और उत्तेजना के बाद उनमें शिथिलता आती है। "इससे इन्द्रियाँ अपनी स्वाभाविक प्रकृति-दत्त शक्ति को खो बैठती हैं और उन्हें उत्तेजित करने के लिए पुनः मादक वस्तु लेनी पड़ती है। इसलिए वह वस्तु 'खुराक' बन जाती है और उसकी तृप्ति के लिए मादक वस्तु का प्रयोग करना ही पड़ता है। इस प्रकार अन्त में **'व्यसन'** हो जाता है।

यदि आप कहें कि यह तो योगिराज श्री शिव शङ्कर जी लेते हैं, तो वे उस स्तर के योगी हैं—भक्तों के तो भगवान् ही हैं! उनमें असीम शक्ति है। उन्होंने लोक-हितार्थ हलाहल विष का पान कर लिया था। उस विष का एक बूंद भी यदि हम लोग ले लें, तो प्राण ही न रह जायँ! अतः हमें उन शक्ति-मान् परमेश्वर के कार्य की नकल न करनी चाहिए, बल्कि उनके उपदेशों को ग्रहण करना चाहिए।

'विजया' लेने से, जैसा कि आपने उसका प्रभाव होना लिखा है कि पूजा के समय ध्यान करने में चित्त एकाग्र हो जाता है। यह बात तो ठीक है कि मन और इन्द्रियाँ संयमित हो जाती हैं किन्तु ऐसा करते रहने से मन और इन्द्रियों की स्वाभाविक प्रकृति-प्रदत्त शक्ति क्षीण हो जाती है, जो घातक है।

हमें **'पूजा'** के द्वारा मन और इन्द्रियों को संयमित करना है। अपनी शक्ति से, जो ईश्वर ने मनुष्य मात्र को दे रखी है, यह कार्य करना चाहिए, न कि किसी अन्य निमित्त, कारण या करण से। **'विजया'** के प्रभाव से इच्छा-शक्ति या आत्म-बल भले बढ़े, किन्तु हमें स्वतः, बिना उसका सहारा लिए, अपने साधन से ही इच्छा-शक्ति, मनोशक्ति तथा आत्म-शक्ति को बढ़ाना उचित है। यह तो पर-तन्त्रता हो जाएगी, यदि हम **'विजया'** के अधिकार में हो जाएंगे।

हम **'पूजा'** द्वारा स्वतन्त्र तथा मुक्त होना चाहते हैं, **'विजया'** के द्वारा नहीं। इसलिए मेरी समझ में आपकी यह क्रिया करने योग्य नहीं है। भावी पीढ़ी को आप यह जो छूट दे रहे हैं कि वह मादक वस्तु लेकर अपने मन-उद्वेगों को शान्त कर सकता है, उचित नहीं है।

मैं चिकित्सक तथा शल्य-चिकित्सक—डाक्टर हूँ। ८५ वर्ष का हो गया हूँ। अवकाश-प्राप्त सर्जन हूँ। शासकीय अस्पताल में था, अब घर में ही विश्राम व भगवन्नाम-स्मरण करता हुआ जीवन बिता रहा हूँ। मेरा मत है कि कोई भी **मादक वस्तु** नहीं लेनी चाहिए। अपनी **'साधना'** द्वारा—भगवन्नाम-स्मरण से ही स्वतः शक्ति प्राप्त कर संयम-नियम का पालन करते हुए आत्म-बल और इच्छा-शक्ति को बढ़ाना चाहिए।...'

उत्तर—यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने **'पूजा - रहस्य'** को ध्यान से पढ़ा ही नहीं, उसकी बातों पर गम्भीरता से विचार करने की कृपा भी की। साथ ही आपको जैसा लगा, स्पष्ट शब्दों में लिखकर भेजने का भी अनुग्रह किया। इस सबके लिए हृदय से धन्यवाद!... **'विजया'** आदि के सम्बन्ध में आपने जो लिखा है, वह वास्तव में **'पूजा'** या **'साधना'** की दृष्टि से यथार्थ नहीं है। **'पूजा या साधना'** में **'विजया'** आदि ग्रहण करने की विशेष विधि है। सिद्ध मन्त्रों द्वारा इन विष-तुल्य पदार्थों को शोधित कर **'अमृत'**-रूप में ग्रहण किया जाता है। मैं कितने ही **'मद्यप'** एवं **'विजया'** के व्यसनी महानुभावों को जानता हूँ, जिन्होंने उक्त विधि को जैसे ही अपनाया, कुछ ही समय के भीतर वे उनके व्यसनों से मुक्त हो गए। आयुर्वेद से परिचित लोग जानते हैं कि शोधित **'विष'** भी मात्रानुसार लेने से **'अमृत'** का कार्य करता है।... कदाचित् आपको यह भी ज्ञात नहीं है कि **'विजया'** आदि ग्रहण करने का अधिकार किसी को तभी मिलता है, जब वह विधि-वत् तन्त्रोक्त **'दीक्षा-संस्कार'** से शिक्षित होकर प्रारम्भिक साधना का **अभ्यास कर लेता है।**

(शेष पृष्ठ २२४ के नीचे)

ये हैं पुनीत 'नव-रात्र'

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल

दुर्गे कराल-वदने ! वरदे ! भवानी, अम्बे ! सुरारि-हननी भव-दुःख हन्त्री ।
हे दैत्य-वंश-तरु-मूल-विनाशिनी माँ, काली करालि ! सुनिए बिनती हमारी ।।१

ये हैं पुनीत नव-रात्र समाप्त भी हैं, पूजा कहाँ स-विधि हो ? जननी, बताओ ।
अत्यन्त ही कठिन है सब वस्तु पाना, सामान श्रेष्ठ तुमको प्रिय जो रहा है ।।२

हा हन्त! 'तीर्थ' मिलना अति ही असाध्य, त्यों 'शुद्धि' भी विमल वस्तु अनूप भोज्य ।
पीयूष-पूरित 'तृतीय' न 'पञ्चमादि', हो प्राप्त माँ ! कठिन काय यहाँ दिखाता ।।३

है भी नहीं जननि ! साधक विज्ञ कोई, होता यहाँ मददगार करूँ स्व-पूजा ।
या मैं कहूँ निज कथा सुनिए भवानी, हा, है अभाव मुझमें सुठि भक्ति का ही ।।४

क्यों मैं करूँ न चित दे सब भाँति तेरी, पूजा गुलाब-कुसुमादिक से अनूठी ।
गेंदा जुही बकुल पङ्कज चारु बेला, हैं पुष्प सुन्दर सभी मिलते अनेकों ।।५

मुद्रा भली विमल माखन शुद्ध दूध, मीठा दही सुघर मोदक भी मलाई ।
पेड़े सु-स्वादु बढ़िया हलुआ जलेबी, बर्फी संदेश खुर्मा मिलते सभी तो ।।६

क्या त्यों नहीं सुलभ हैं नमकीन चीजें, आलू रसाल-चटनी प्रिय दाल-मोट ?
औ हैं बड़े चरफरे अति ही कचालू, भण्टे भले सहित सेम हरी पलाकी ।।७

हैं भी, मिलें, तदपि, नीच मलीन चित्त, आसक्त है विषय में कुछ भी न ठीक ।
लाके सकूँ कर सु-पूजन अम्ब ! तेरा, है किन्तु केवल नहीं, धिक् हाय भक्ति! ।।८

आत्माभिमान-मद में भ्रमता फिरूँ मैं, लज्जा नहीं तनिक भी, न दया जरा है ।
हा ! है कु-भाव मन में यह तो समाया, मैं एक हूँ जगत् में बुध सत्य नान्य ! ।।९

विद्या-निधान हम पण्डित पूजनीय, भू-देव श्रेष्ठ अति ज्ञान सही हमारा ।
आचार-वान यदि पण्डित व्यक्ति कोई, तो हैं हमीं बस, यही कहता फिरूँ मैं !।।१०

मैं नीच दास बनता हत ज्ञान-हीन, अत्यन्त घोर अति ओज समेत गर्व ।
कैसे करूँ तव सु-पूजन भक्ति-युक्त, दुर्गे, करालि ! जब है विषयाक्त चित्त ।।११

मैं तो कु-पूत अति पामर दुष्ट अम्ब ! माता समान करती सबसे सनेह ।
माँ ! कीजिए अब तुरन्त क्षमा मुझे तू, मैं हूँ निकृष्ट अधमाधम दुष्ट ही हूँ ।।१२

(पृष्ठ २२३ का शेष)

आपने जो कुछ लिखा है, वह उन लोगों के सम्बन्ध में शब्दशः सत्य है, जो **भौतिक दृष्टि एवं शैली** से 'तनाव' या 'दुःख' से छुटकारा पाने लिए **नशे के रूप में** या **औषधि के रूप में** मादक पदार्थों को अपनाते हैं। इसके विपरीत **आध्यात्मिक दृष्टि या शैली** से उन्हें अपनाने पर किसी प्रकार का व्यसन व्यक्ति को नहीं होता।

जीवन में किसी - न - किसी वस्तु का 'सहारा' लेना ही पड़ता है। **'सहारा'** भी दो प्रकार का होता है—१ प्राकृतिक, २ कृत्रिम। पञ्च - तत्त्वों का 'सहारा' लिए बिना जीवन चल ही नहीं सकता। इन्हीं तत्त्वों में से **'अग्नि-तत्त्व'** का प्रतिनिधित्व **'साधना-क्षेत्र' में मादक पदार्थ** करते हैं। इस सम्बन्ध में प्रामाणिक ज्ञान जो प्राप्त करना चाहें, वे **'पञ्च-मकार तथा भाव-त्रय'** नामक पुस्तक (मूल्य १५ रुपए) से प्राप्त कर सकते हैं।

शारदीय नवरात्र, 'व्यय' सम्वत् २०५० वि० (१९ अक्टूबर, ९३ से)

आश्विन शुक्ला-प्रतिपदा	१६-१०-९३ (शनिवार)	'घट'-स्थापन, 'चण्डी'-पाठ-आरम्भ, सप्त-दिवसीय पाठ में प्रथम अध्याय।
आश्विन शुक्ला-द्वितीया	१७-१०-९३ (रविबार)	'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय-पाठ में अध्याय२-३।
आश्विन शुक्ला-तृतीया	१८-१०-९३ (सोमवार)	श्रीविनायकगणेश-चतुर्थी। 'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय-पाठ में अध्याय४।
आश्विन शुक्ला-चतुर्थी	१९-१०-९३ (मङ्गलवार)	श्रीललिता-व्रत। 'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में अध्याय५-६–७-८।
आश्बिन शुक्ला-पञ्चमी	२०-१०-९३ (बुधवार)	'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय-पाठ में अध्याय ९-१०।
आश्विन शुक्ला-षष्ठी	२१-१०-९३ (वृहस्पतिवार)	'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय-पाठ में अध्याय११।
आश्विन शुक्ला-सप्तमी	२२-१०-९३ (शुक्रवार)	महा-अष्टमी-व्रत। 'चण्डी'-पाठ। सप्त-दिवसीय पाठ में अध्याय१२-१३। बलिदान। महा-निशा-पूजन।
आश्विन शुक्ला-अष्टमी	२३-१०-९३ (शनिवार)	श्रीदुर्गा-नवमी। नवरात्र का पारण-पूजन-पूर्वक क्षमापण-स्तोत्र-पाठ, नीराजन, होम आदि।
आश्विन शुक्ला-नवमी	२४-१०-९३ (रविवार)	विजया-दशमी। 'पूर्णाभिषेक'-पर्व

रजि॰ संख्या
32981/57

आश्विन, २०५० वि० - अक्टूबर, ९३

रजि॰ संख्या
AD~96

इस नव-रात्र की भावना

वर्तमान काल में आसन्न भविष्य को ध्यान में रखते हुए आस्तिक बन्धुओं की दशा बहुत कुछ वैसी ही प्रतीत होती है, जैसी देवासुर - संग्राम काल में देवताओं की रही है। अतः उस समय श्री जगदम्बा के आविर्भाव की जो भावना श्रीदुर्गा सप्तशती में दी है, उसको हृदयङ्गम करना ही इस पवित्र 'नवरात्र'-काल में श्रेयस्कर होगा। आशा है, 'चण्डी' के पाठक श्रीदुर्गा सप्तशती के दूसरे अध्याय के-'कर पैदा अपने त्रिशूल से, शिव ने किया त्रिशूल प्रदान' से लेकर 'नाग-हार ला दिया शेष ने, तब नागों के पति सुख मान ' तक के १९ से २९ तक के श्लोकों का पाठ कर ऐक्य-शक्तिके महत्त्व की भावना को कार्य-रूप में परिणत करने को तत्पर होंगे ।

साधक बन्धु अपने नित्य की साधना के पूर्व स्व-राष्ट्र-कल्याणार्थ सप्त-श्लोकी चण्डी-पाठ का संकल्प कर तीन/पाँच/सात/ पाठ करेंगे, तो उत्तम भविष्य साकार हो सकेगा ।

सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक : ऋतशील शर्मा
चण्डी - कार्यालय, परावाणी प्रेस, प्रयाग २११००६